श्रीकृष्ण-सन्देश
वर्ष ७ : अंक ११

नीतिवचनामृत

१

एकः प्रसूयते जन्तुरेक एव प्रलीयते ।
एको नु भुङ्क्ते सुकृतमेक एव हि दुष्कृतम् ॥

एक हि जनमत जीव जग एक हि होत प्रलीन ।
एक हि भोगत सुकृत-फल एक हि अघ जो कीन ॥

२

नेह चात्यन्तसंवासः कर्हिचित् केनचित् सह ।
राजन् स्वेनापि देहेन किमु जायात्मजादिभिः ॥

कबहुँ न नित सहवास इह रह किनहू सँग कुत्र ।
साथ देत तन हू नहीं कहँ जाया कहँ पुत्र ॥

३

किं दुःसहं नु साधूनां विदुषां किमपेक्षितम् ।
किमकार्यं कदर्याणां दुस्त्यजं किं धृतात्मनाम् ॥

को साधुनको दुसह दुख का बुध-जनको चाह ।
सठ न कवन अकरम करत जित-मन तजत न काह ॥

•

श्रीकृष्ण-सन्देश

धर्म, अध्यात्म, साहित्य एवं संस्कृति-प्रधान मासिक

प्रवर्तक

ब्रह्मलीन श्री जुगलकिशोर बिरला

सम्मानित

● सम्पादक-मण्डल

आचार्य सीताराम चतुर्वेदी

डा० विद्यानिवास मिश्र

विश्वम्भरनाथ द्विवेदी

डॉ० भगवान् सहाय पचौरी

● सम्पादक

पाण्डेय रामनारायणदत्त शास्त्री 'राम'

गोविन्द नरहरि वैजापुरकर

संख्या ●

वर्ष : ७, अङ्क : ११

जून, १९७२

श्रीकृष्ण-संवत् : ५१९८

शुल्क ●

वार्षिक : ७ रु०

आजीवन : १५१ रु०

प्रबन्ध-सम्पादक

देवधर शर्मा

प्रकाशक :

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ, मथुरा

दूरभाष : ३३८

सादर निवेदन

(माननीय लेखकों, ग्राहकों एवम् अनुग्राहकों से)

श्रीकृष्ण-सन्देशका यह ग्यारहवाँ अङ्क है। इसके एक मासबाद श्रीकृष्ण-सन्देश आठवें वर्षमें प्रवेश करेगा। आगामी जुलाई-अङ्क इस वर्षका अन्तिम बारहवाँ अङ्क होगा। आगामी वर्षका विशेषांक अपनी समुचित एवं संग्रहणीय सामग्रीके कारण विशेष रूपसे पठनीय एवं मननीय होगा, इसके लिए विद्वान् लेखक महानुभावोंसे सादर उत्कृष्ट लेख भेजनेके लिए अनुरोध किया जा रहा है। लेखोंकी विषय-सूची अन्यत्र दी जा रही है।

श्रीकृष्णसन्देश भगवान् श्रीकृष्णका पत्र है। इसे सब प्रकारसे सहयोग देकर आगे बढ़ाना तथा इसे अधिकाधिक लोकप्रिय बनाना हम सबका काम है। इधर कतिपय अनिवार्य कारणोंसे श्रीकृष्ण-सन्देशके प्रकाशनमें विलम्ब होता गया है। इसके लिए ग्राहक महोदय क्षमा करेंगे। हम इस वर्तमान अङ्कसे ही इस त्रुटिको दूर करनेका विशेष प्रयत्न कर रहे हैं। ग्राहकोंसे अनुरोध है कि आठवें वर्षके लिए अग्रिम शुल्क भेजकर तथा नये ग्राहक बनाकर आप श्रीकृष्ण-सन्देशके माध्यमसे श्रीकृष्णकी सेवामें संलग्न हो पुण्य तथा यशके भागी बनें। विज्ञापन-दाता सज्जन भी अपनी व्यापारिक उन्नतिके लिए श्रीकृष्ण-सन्देशको अधिकाधिक विज्ञापन दें। इससे उनके लोक-लाभ और परलोक-निर्वाह दोनों सिद्ध होंगे।

—व्यवस्थापक

श्रीकृष्ण-जन्म-स्थान-सेवा-संघ

मथुरा

मासिक व्रत, पर्व एवं महोत्सव

[संवत् २०२९ ज्येष्ठ शुक्ल प्रतिपद् १२ जून '७२ से आषाढ़ शु० प्रतिपद १० जुलाई '७२ तक]

जून : १९७२ ई०

दिनांक	वार	व्रत-पर्व
१३	मंगलवार	रम्भा-तृतीया।
१४	बुधवार	गणेश-चतुर्थी-व्रत, श्री प्रतापजयन्ती।
१५	गुरुवार	गुरु अर्जुन देव-दिवस।
१६	शुक्रवार	विन्ध्यवासिनी-पूजा।
१९	सोमवार	क्षीरभवानी मेला (काश्मीर)।
२१	बुधवार	गङ्गादशहरा।
२२	गुरुवार	निर्जला एकादशी सबके लिए।
२३	शुक्रवार	चम्पक-द्वादशी।
२४	शनिवार	शनिप्रदोष व्रत।
२६	सोमवार	स्नानदानकी पूर्णिमा।
२७	मंगलवार	गुरुगोविन्दसिंह जन्मदिवस।

जुलाई : १९७२ ई०

दिनांक	वार	व्रत-पर्व
४	मंगलवार	शीतलाष्टमी।
६	गुरुवार	योगिनी एकादशी-व्रत, सबके लिए।
८	शनिवार	शनिप्रदोष व्रत।
९	रविवार	मासशिवरात्रि १४ व्रत।
१०	सोमवार	स्नान-दानादिके लिए सोमवती अमावस्या।

अनुक्रम

श्रीकृष्ण-जन्म-स्थान :

प्रत्यक्षदर्शियोंके भावभीने शब्द-सुमन

(जून १९७२)

★

भगवान् श्रीकृष्णकी पावन जन्म-भूमिके दर्शन कर कृतकृत्य हुआ।

ओ० पी० आर्य
नगर अभियन्ता नगर महापालिका, आगरा

आज श्रीकृष्ण जन्मभूमिका दर्शन करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। अभिलाषा तो बहुत दिनोंसे थी, वह अब पूरी हुई। यहाँ पर जो निर्माण-कार्य चल रहा है वह और निर्माताओंकी अभिलाषा पूरी हो, यही हमारी भगवान् श्रीकृष्णसे प्रार्थना है।

सीताराम चौधरी
बेतिया (चम्पारन), बिहार

मैं आज यहाँ जन्म-स्थान देखकर बहुत ही प्रसन्न हुई। वास्तव में यह बहुत ऊँचा और महनीय स्थान है।

चन्द्रमोहिनी पण्डिता
धर्मपत्नी जिलाधीश, अलीगढ़

आज १५० यात्रियोंकी पार्टी (पीलाघर तीर्थयात्री-संघ हरिद्वार) पीलाघर, उदयपुर (राजस्थान) से वृन्दावन होकर श्रीकृष्ण-जन्मस्थान के दर्शन कर बहुत प्रसन्न हुई। यहाँ जो भागवत-भवन बन रहा है वह भारतका एक अद्वितीय संस्थान होगा। इसे पूरा करनेमें सभी यात्रियोंको जुटकर सहयोग करना चाहिए; ऐसी हम सबकी प्रेरणा और अभिलाषा है।

नाथूलाल चौधरी
पीलाघर तीर्थयात्री-संघ हरिद्वार
पीलाघर जिला उदयपुर (राजस्थान)

This is a most beautiful place. The warmth and hospitality shown to us is greatly appreciated. Thank you for your kindness.

Dr. & Mrs. J. M. Dusay M. D.
2709, Jackson St. Sanfrancisco
California, U. S. A.

Visited the birthplace of Krishna today with Shri Kondaji Barappa M. P. the place is sacred & is maintained very well. The construction of the memorial is going on with good speed & I hope & wish that it would be completed very soon with the co-operation ef the people.

F. H. Mohsin
Dy. Home Minister, Govt. of India.
New Delhi

Visited this place today & was much impressed with the remarkable work done by the trust & devotion of the staff assigned various jobs here. I wish them grand success.

S. M. Mathur (I. R. S.)
B-21, Rly. Officers H. Q.
E. Road, Bombay-20

वर्ष : ७] मथुरा, जून १९७२ [अङ्क : ११

ध्यानकी विधि

मुमुक्षु पुरुषको मेरा ध्यान कैसे करना चाहिये, यह बताया जाता है। साधक सम आसनपर, जो न बहुत ऊँचा हो, न बहुत नीचा ही, शरीरको सीधा रखकर आरामसे बैठ जाय। दोनों हाथोंको अपनी गोदमें रख ले। दृष्टिको अपनी नासिकाके अग्रभागपर जमावे। इसके बाद पूरक, कुम्भक और रेचक तथा रेचक, कुम्भक और पूरक इन प्राणायामोंके द्वारा नाड़ियोंका शोधन करे। प्राणायामका अभ्यास धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए और उसके साथ इन्द्रियोंको भी जीतनेका अभ्यास करना चाहिये। हृदयमें कमलनालगत पतले सूतके समान ॐकारका चिन्तन करे। प्राणके द्वारा उसे ऊपर ले जाय और घंटानादके समान स्वर स्थिर करे। उस स्वरका तांता टूटने न पावे। इस प्रकार प्रतिदिन तीन समय दस-दस बार ॐकारसहित प्राणायामका अभ्यास करे। ऐसा करनेसे एक महीनेके भीतर ही प्राणवायु वशमें हो जाती है। इसके बाद ऐसा चिन्तन करे कि हृदय एक कमल है। वह शरीरके भीतर इस प्रकार स्थित है मानो उसकी डंडी तो ऊपरकी ओर है और मुँह नीचेकी ओर। अब ध्यान करना चाहिए कि उसका मुँह ऊपरकी ओर होकर खिल गया है। उसके आठ दल (पंखुड़ियाँ) हैं और उसके बीचो-बीच पीली-पीली अत्यन्त सुकुमार कर्णिका (गद्दी) है। कर्णिका पर क्रमशः सूर्य, चन्द्रमा और अग्निका न्यास करना

चाहिए। तदनन्तर अग्निके अन्दर मेरे इस रूपका स्मरण करना चाहिए। मेरा यह स्वरूप ध्यानके लिए बड़ा ही मङ्गलमय है। मेरे अवयवोंकी गठन बड़ी सुडौल है। रोम-रोमसे शान्ति टपकती है। मुख-कमल अत्यन्त प्रफुल्लित और सुन्दर है। घुटनों तक लंबी मनोहर चार भुजाएँ हैं। बड़ी ही सुन्दर और मनोहर गरदन है। मरकत मणिके समान सुस्निग्ध कपोल हैं। मुखपर मन्दमन्द मुसकानकी अनोखी ही छटा है। दोनों ओरके कान बराबर हैं। उनमें मकराकृति कुण्डल झिलमिल-झिलमिल कर रहे हैं। वर्षाकालीन मेघके समान श्यामल शरीरपर पीताम्बर फहरा रहा हैं। श्रीवत्स एवं लक्ष्मीजीका चिह्न वक्षः-स्थलपर दायें-बायें विराजमान है। हाथोंमें वह क्रमशः शङ्ख, चक्र गदा एवं पद्म धारण किये हुए है। गलेमें वनमाला लटक रही है। अपने-अपने स्थान पर चमचमाते हुए किरीट, कंगन, करधनी और बाजूबन्द शोभायमान हो रहे हैं। मेरा एक-एक अङ्ग अत्यन्त सुन्दर एवं हृदयहारी है। सुन्दर मुख और प्यारभरी चितवन कृपा-प्रसादकी वर्षा कर रही है। इस प्रकार मेरे सुकुमार रूपका ध्यान करना चाहिए और अपने मनको एक-एक अङ्गमें लगाना चाहिए।

बुद्धिमान पुरुषको चाहिए कि मनके द्वारा इन्द्रियोंको उनके विषयोंसे खींच ले और मनको बुद्धिरूप सारथिकी सहायतासे मुझमें ही लगा दे। जब सारे शरीरका ध्यान होने लगे तब अपने चित्तको खींचकर एक स्थानमें स्थिर करे और अन्य अङ्गोंका चिन्तन न करके केवल मन्द-मन्द मुसकानकी छटासे युक्त मेरे मुखका ही ध्यान करे। जब चित्त मुखारविन्दमें ठहर जाय तब उसे वहाँसे हटाकर आकाशमें स्थिर करे। तदनन्तर आकाशका चिन्तन भी त्याग कर मेरे स्वरूपमें आरूढ़ हो जाय। मेरे सिवा किसी भी वस्तुका चिन्तन न करे। जब इस प्रकार चित्त समाहित हो जाता है; तब जैसे एक ज्योति दूसरी ज्योतिसे मिलकर एक हो जाती है वैसे ही वह अपनेमें मुझे और मुझ सर्वात्मामें अपनेको अनुभव करने लगता है। जो योगी इस प्रकार तीव्र ध्यानयोगके द्वारा मुझमें ही अपने चित्तका संयम करता है उसके चित्तसे वस्तुकी अनेकता, तत्सम्बन्धी ज्ञान और उनकी प्राप्तिके लिए होनेवाले कर्मोंका भ्रम शीघ्र ही निवृत्त हो जाता है।

आओ, गोविन्द आओ !

आओ प्यारे गोविन्द लाल।
हैं बुला रहे कबसे तुमको भारतके सारे ग्वाल-बाल ॥

जब दुष्ट पूतना आयी थी
उसने दुर्मति दिखलायी थी
तब तुम्हीं बने उस पापिनके घनश्याम! अकेले महाकाल ॥

जब कंस कर रहा मनमाना
उसने न किसीको कुछ जाना
तब तुमने ही था सभा बीच कुचला उसका दुःशील भाल ॥

यमुनाके कालीदहका था
कालिया नाग तुमने नाथा
करपर गिरिवर धर बचा लिये व्रजके गो-गोपी और ग्वाल ॥

विष्णु-सहस्रनाम

श्री आचार्य विनोबा भावे

★

हम रोज सुबह ईशावास्यका पाठ करते हैं। वह एक ऐसी उपनिषद् है, जिसमें पारमार्थिक जीवनका परिपूर्ण स्वरूप थोड़ेमें रख दिया गया है। अगर कोई मुझसे कहे कि तू एक ही ग्रन्थ चुन ले, तो मैं ईशावास्य चुनूँगा। मैंने उसपर एक विस्तृत टीका भी लिखी है। कठिन है समझनेके लिए, लेकिन पर्याप्त है। परन्तु वह चीज ऐसी है कि रोज प्रार्थनामें बोलते रहे, उतनेसे लाभ नहीं होगा। थोड़ा तो होगा, बोलते-बोलते चित्तपर कुछ संस्कार होता रहेगा; परन्तु उसपर चिन्तन-मनन करना चाहिए, उसे आचरणमें लाना चाहिए, तब उससे लाभ होगा। शामको हम स्थितप्रज्ञके श्लोक बोलते हैं, उसमें परिपूर्ण गीता आ जाती है। स्थितप्रज्ञ गीताका आदर्श है। वह शब्द भी गीताका अपना स्वतन्त्र शब्द है। उसमें साधकका भी लक्षण बताया है और सिद्ध पुरुषका भी। साधना भी बतायी है और अन्तिम लक्ष्य भी। वह एक परिपूर्ण दर्शन है। सिवनी-जेलमें उसपर व्याख्यान देनेका मौका आया था, उन्हीं व्याख्यानोंको लेकर 'स्थितप्रज्ञदर्शन' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई है। लेकिन इसके भी चिन्तन, मनन और आचरणका सवाल आता है।

किन्तु हम जो विष्णुसहस्रनाम बोलते हैं, उसमें केवल पारायणकी ही बात है। वहाँ तो केवल स्मरणमात्रेण शुद्धि होती है। ऐसे तो सभी नाम एक भगवान्‌के ही हैं। अन्तमें कहा है—

आकाशात् पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम्।
सर्व देव नमस्कारः केशवं प्रति गच्छति॥

ब्राह्मण जो सन्ध्या करते हैं, उसमें भी प्रथम नाम केशव है। सन्त नामदेवको भी केशव नाम अत्यन्त प्रिय है। पंढरपुरके बिट्ठलका मूल नाम केशव है। इंटपर खड़ा है, इसलिए उसको विट्ठल कहते हैं। सर्वत्र केशव नाम प्रसिद्ध है तो महाराष्ट्रमें विठ्ठल नाम प्रसिद्ध है। राम नाम तो है ही, हरि नाम भी है। राम-कृष्ण-हरि तो रूढ ही है। इन सब नामोंका जप होता है, लेकिन एक ही नाम हजार-हजार बार बोला जाय तो उससे मनुष्यको कभी थकान भी आ सकती है। विविधता हो तो थकान नहीं आती। विविध वृक्ष हों तो देखनेमें अच्छा लगता है। उसका एक अलग असर होता है। हजार पेड़ हैं, लेकिन एक ही प्रकारके हैं तो देखते-देखते थकान आ जाती है। विष्णुसहस्रनाममें एक हज़ार अलग-अलग नाम हैं, इसलिए उसके पारायणसे थकान नहीं आती। उसमें चिन्तन-मननकी अपेक्षा नहीं। कोई उसका चिन्तन-मनन करे, तो भी लाभ है, न करे और केवल पारायण ही करे तो भी लाभ है।

शंकराचार्यने अनेक भाष्य लिखे। उनकी प्रस्थानत्रयी दर्शनका आधार है। प्रस्थानं यानी आधार। तिपाईके तीन पाँव होते हैं, वैसे ये दर्शनके तीन आधार हैं : गीता, ब्रह्मसूत्र और उपनिषद्। ब्रह्मसूत्र और उपनिषद् विद्वद्-जनोंके लिए हैं। ब्रह्मसूत्रपर शंकराचार्यका जो भाष्य है, वह पढ़नेसे शंकाओंका समाधान हो जाता है, लेकिन शंकाशीलोंकी शंकाओंका समाधान करनेकी सामर्थ्य उसमें है। वैसे शंकाशून्य भक्तके मनमें अनेक शंकाएँ पैदा करनेकी सामर्थ्य भी उसमें पड़ी है। शंकराचार्यने अनेक भाष्य लिखे, लेकिन आखिर सामान्यजनोंके लिए स्तोत्र लिखे। उनमें क्या कहा? **गेयं गीता-नामसहस्रम्**। प्राचीन कालमें सहस्रनाम नहीं कहते थे, 'नामसहस्रम्' कहते थे। 'नाम्नां सहस्रम्' यह प्राचीन संस्कृत पद्धति हुई, बचपनमें मैंने 'गेयं गीता-नामसहस्रम्' पढ़ा, तब मुझे उसका यह अर्थ मालूम नहीं था। गीताका ही नाम हजार बार बोलना ऐसा अर्थ समझा था, बादमें संस्कृतका ज्ञान हुआ तब सही अर्थ ध्यानमें आया।

शङ्कराचार्य महान् ज्ञानी थे, लेकिन जब उन्हें सामान्यजनोंसे बात करनेका मौका आया, तब उन्होंने गीता और विष्णु-सहस्रनामकी ही बात कही, यह क्यों? इसलिए कि लोगोंमें जो भक्ति-भावना होती है, उसे दृढ़ करना है। सामान्य लोगोंके लिए यही परमार्थका सरलतम साधन है। उनके सिरपर ज्ञान लादकर यह नहीं कर सकते। तुकारामने कहा : 'ये हजार नाम हमारे हजार हथियार हैं।' उन्होंने अपनी कन्याकी शादी करायी, तो दामादको दहेजके रूपमें क्या दिया? अपने हाथसे लिखी विष्णुसहस्रनामको एक प्रति दी। तो, विष्णुसहस्रनामका पारायण करनेसे ही लाभ हो जाता है।

पारायणसे लाभ : १. सर्वांगीण स्नान

पारायणसे जो प्रकट लाभ होता है, वह है ही, लेकिन मुख्य लाभ है गूढ लाभ। प्रकट लाभ यह है कि वाणी जरा स्वच्छ होती है, पढ़ना आता है। गूढ लाभ यह है कि पारायणमें स्नान हो जाता है। नदीमें स्नान करनेसे शरीरको जैसे आपादमस्तक ठंडक पहुँचती है, वैसे ही पारायण करनेसे भी। उससे केवल बुद्धि या वाणीको ही लाभ होता है ऐसा नहीं, वह सर्वांगीण स्नान है।

२. समय बीतनेका सुलभ साधन

पारायणका दूसरा लाभ है : 'कालक्षपणहेतवः'। काल कैसे बीतेगा? जेलमें मैं जमना-लालजीके साथ शतरंज खेलता था। बचपनमें मुझे शतरंजका शौक था। खूब खेलता था। एक दिन रातको सपनेमें शतरंज आया, तो मैंने दूसरे दिनसे शतरंज खेलना छोड़ दिया। मैंने सोचा—जब यह सपनेमें आता है तो हमपर आक्रमण कर रहा है। इसलिए अब इसको छोड़ ही देना चाहिए। लेकिन उस खेलके लिए मेरे मनमें आदर है। 'गंजीफा' (चौपड़)में नसीबपर ज्यादा निर्भर रहता है, पर शतरंजमें बिलकुल आमने-सामने सेना खड़ी रहती है। खुले दाव चलते हैं। जेलमें दूसरा काम तो था नहीं, तो खेलना आरम्भ किया। वे बहुत अच्छे खेलते थे। मैं ऐसे ढंगसे खेलता कि उनकी जीत हो जाती। एक दिन वे बोले, 'आप पूरा ध्यान लगाते नहीं दीखते।' आखिर एक दिन पूरा ध्यान लगाया। उन्होने भी लगाया। न वे हारे और न

मैं हारा। तब मैंने कहा : 'दूसरे दिनतक दांव रखना ठीक नहीं, या आप हारनेकी तैयारी करिये या मैं करता हूँ।'

चित्तकी निर्विकारता

एक दफा मैंने कृत्रिम दाँत रखे थे। उस समय मैं दिल्लीमें था। एक दिन मावलंकर मुझसे मिलने आये। मैं दाँत साफ कर रहा था। १५-१० मिनट लगे उस कामके लिए। बादमें उन्होंने मुझे लिखा : 'यह काम तो दूसरा कोई मनुष्य भी कर सकता था, आप उस समयका उपयोग दूसरे कामके लिए कर सकते थे। आपका इतना समय रोज उसमें क्यों जाना चाहिए?' मैंने जवाब लिखा : 'जिस समय चित्त निर्विकार रहता है, उस समयको मैं सार्थक मानता हूँ। जिस समय चित्तमें विकार आये, फिर चाहे कोई भी काम करते हो, वह समय बेकार गया, ऐसा मानता हूँ।' उन्होंने इसका जवाब दिया : 'आज हमें नयी दृष्टि मिल गयी।' तो, जो भी काम हम करते हैं, उसमें चित्त निर्विकार रखनेका अभ्यास करना चाहिए। पारायणसे इसमें मदद मिलती है।

सामूहिक पारायणसे लाभ

सामूहिक पारायणका और भी लाभ होता है। प्राचीन पुराणोंमें ऋषियोंकी तपस्याका जिक्र आता है। अमुक ऋषिने हजार उपवास किये। इसका क्या मतलब है? गांधीजीने २१ दिनके उपवास किये थे। मैंने भी उनके साथ उपवास किये। मेरा और उनका वैसा एग्रीमेण्ट (करार) ही था। उनके उपवासकी खबर एक दिन देरसे मुझे मिली, इसलिए मेरे २० दिनके उपवास हुए। उस वक्त मैंने एक विचार रखा था : 'मान लीजिये, गांधीजीने २१ दिनके उपवास किये। हजार लोगोंने उनके साथ उपवास किये। १००० लोगोंने सामूहिक उपवास किये तो जिसकी प्रेरणासे उपवास किये उसका नाम लिया जायगा। ऋषिने १००० उपवास किये, ऐसा हम पढ़ते है, तो हमें बड़ा अजीब लगता है। लेकिन उसका मतलब यह है कि जिस ऋषिकी प्रेरणासे औरोंने उपवास किये, उनके नामपर सारे उपवास माने गये।'

यह भाष्य मुझे उस वक्त सूझा। तबतक माना जाता था कि पुराने लोगोंको बड़े-बड़े आंकड़े सुनानेकी आदत होती है जो हमारे उपयोगकी बात नहीं। लेकिन वह सामूहिक उपासनाका चिह्न है। **शतं वैखानसाः**। सौ तपस्वियोंने मिलकर सूक्त बनाया। २५-५० मन्त्रोंको सूक्त कहते है। जंगलमें नग्न तपस्या करनेवाले ऋषि थे। उनका नाम वैखानस। **शतं वैखानसाः** का क्या मतलब? मतलब, एक मुख्य मनुष्य होगा, जो सूक्त बनाता होगा, बाकी लोग बैठते होंगे, चर्चा होती होगी, अर्थ होता होगा, आवश्यक फरक होता होगा। सामूहिक सूक्त बनता होगा सब ऋषियोंकी मददसे। वैसे ही पारायणकी बात है। मान लें, हम यहाँ रोज २० लोग विष्णुसहस्रनामका पारायण करते हैं, तो रोज हमारे २० पारायण होते है। महीनेमें ६०० पारायण होते हैं। यह सामूहिक उपासनाकी पद्धति है। सामूहिक ध्यान और सामूहिक पारायणका अपना विशेष महत्त्व है।

('मैत्री'के फरवरीके अंकसे साभार)

श्रीकृष्णके गीतामृतकी कामधेनु

कठोपनिषद् : एक परिशीलन

श्री 'शंखपाणि'

★

पाश्चात्त्य विचारकोंने उपनिषद्को मानव-चेतनाका सर्वोच्च फल बतलाया है। विश्वकवि रवीन्द्रनाथने कहा है : 'चक्षुसम्पन्न व्यक्ति देखेंगे कि भारतका ब्रह्मज्ञान समस्त पृथ्वीका धर्म बनने लगा है। प्रातःकालीन सूर्यकी अरुण किरणोंसे पूर्वदिशा आलोकित होने लगी है। किन्तु जब यह सूर्य मध्याह्न-गगनमें प्रकाशित होगा, उस समय उसकी दीप्तिसे समस्त भूमण्डल दीप्त हो उठेगा।' स्वामी विवेकानन्दने वर्तमान भारतके जीवनमें उपनिषद्की कार्यकारिताकी मुक्तकण्ठसे घोषणा की है। उन्होंने उपनिषदोंको 'तेजकी खानें' कहा है और उपनिषदुक्त तेजस्विताको ही जीवनमें परिणत करनेकी सलाह दी है।

उपनिषदें वेदका शिरोभाग हैं। वे ज्ञानप्रधान होनेसे वे 'ज्ञानकाण्ड' कहलाती हैं और वेदोंका अन्त अथवा वेदोंका चरम सिद्धान्तरूप होनेसे उन्हें 'वेदान्त'शास्त्र भी कहते हैं। इन्हीं उपनिषदोंमें कठोपनिषद्का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वह गीतामृतकी कामधेनु है। जिन उपनिषद्रूपी गौओंसे दोग्धा गोपालनन्दनने गीतामृतका दोहन किया है, उनमेंसे कठोपनिषद् प्रमुख है। आइये, आज हम इसी उपनिषद्का परिशीलन करें।

कठोपनिषद्में यम और नचिकेताके संवादरूपमें ब्रह्मविद्याका विशद वर्णन उपलब्ध होता है। इसकी वर्णन-शैली सुबोध और सरल है। श्रीमद्भगवद्गीतामें इसके बहुतसे मन्त्रोंका कहीं शब्दतः और कहीं अर्थतः उल्लेख हुआ है।

महर्षि वाजश्रवाके पुत्र उद्दालकने विश्वजित् नामक यज्ञका अनुष्ठान आरम्भ किया था। उसमें वे अपना सारा धन दान कर रहे थे। ऋषिका सबसे बड़ा धन होता है गोधन। वे उस गोधनको बांट रहे थे। उनके पुत्र नचिकेताकी अवस्था अभी बहुत छोटी थी, तो भी उसमें आस्तिकता और श्रद्धाका अधिक विकास था। उसने देखा—पिताजी धड़ल्लेके साथ अपने घरकी बूढ़ी गायें दानमें दिये जा रहे हैं। ऐसा दान तो नरकमें गिरानेवाला है। वह पितासे पूछ बैठा : 'पिताजी, मुझे किसको देंगे ?'

यह प्रश्न असंगत न था। विश्वजित् यागमें सर्वस्व-दान दिया जाता है। तब अपने सत्पुत्रका दान दिये बिना वह यज्ञ पूर्ण कैसे हो सकता है ? सर्वस्व-दान तो तभी सम्भव है,

जब कुछ भी अपना न रहे। पुत्रके लिए अच्छी गायें छाँटकर रख ली जायँ और निकम्मी गौएँ दूसरे ब्राह्मणोंके घर भेज दी जायँ, यह कैसा दान है? उसने कई बार अपना उक्त प्रश्न पिताके समक्ष दुहराया।

'तुझे मृत्युको दूँगा'—पिताने खीझकर कह दिया। फिर भी नचिकेताने इसकी उपेक्षा नहीं की। जैसे भी हो, पिताकी आज्ञा हो गयी तो मुझे उसका पालन करना ही है। इसीमें मेरा हित है। सम्भव है, मृत्युदेवताको मुझसे कोई काम हो—यह सोचकर वह तपस्वी कुमार तपःशक्तिसे सशरीर यमलोक जानेको उद्यत हो गया। उसने चिन्तामग्न पितासे कहा:

'आप अपने पूर्वजोंका आचरण देखें। इस समयके श्रेष्ठ पुरुषोंके सदाचारपर भी दृष्टि-पात करें। उनके जीवनमें न पहले कभी असत्य था और न आज है। साधुपुरुष असत्यको कभी प्रश्रय नहीं देते। असत्यसे कोई अजर-अमर नहीं हो सकता। मैं आज न जाऊँ तो भी सदा जीवित नहीं रहूँगा, फिर सत्यको क्यों छोड़ा जाय? मनुष्य मरणधर्मा है। वह कालवश अनाजकी तरह पकता और काट लिया जाता है; पुनः बोये हुए अनाजकी ही तरह नूतन जन्म ग्रहण करता है।'

यमलोकमें यमराजके गृहद्वारपर पहुँचनेपर भी तीन राततक नचिकेताकी उनसे भेंट नहीं हुई। वे किसी कार्यवश अन्यत्र चले गये थे। तबतक नचिकेताने न अन्न ग्रहण किया, न जल। यमराजको दान किया हुआ अपना शरीर उनको समर्पित किये बिना वे भोजन कैसे करते? यह उनकी सत्यनिष्ठाकी परीक्षा थी। बाहरसे लौट आनेपर आतिथ्यधर्मको जानने-माननेवाले यमराजको उनकी पत्नीने अतिथिके भूखे रहनेकी बात बतायी और उसके भयंकर परिणामकी ओर संकेत भी किया। तब धर्मराजने नचिकेताको तीन दिनोंके उपवासके बदले तीन वर माँगनेको कहा।

'मेरे चले आनेसे पिताजी खिन्न एवं अशान्त होंगे, उनका खेद दूर हो, वे शान्ति-लाभ करें।'—यह नचिकेताने प्रथम वर माँगा और इसके द्वारा उसने लोकके समक्ष पावन आदर्श प्रस्तुत किया।

'एवमस्तु, दूसरा वर माँगो।'—धर्मराजने प्रेरित किया।

'सुना है, स्वर्गलोकमें कोई भय नहीं है, वहाँ न मृत्यु है, न जरावस्था। भूख-प्यासका कष्ट भी उस लोकमें किसीको नहीं रहता। वहाँके लोग दुःख-शोकसे दूर रहकर आनन्द भोगते हैं। हमारे मृत्युलोककी स्थिति इसके विपरीत है। वहाँके लोगोंको स्वर्ग मिल सके तो उनका बड़ा उपकार हो। उसका उपाय है अग्निहोत्र-होम। उसका विधि-विधान आपको ही ज्ञात है। आप लोकोपकारकी दृष्टिसे वह विधान मुझे बतायें।'—नचिकेताने प्रार्थना की।

'यह भी दिया। आजसे इस स्वर्गीय अग्निका नाम तुम्हारे नामपर 'नाचिकेत' होगा। यह अतिरिक्त वर तुम्हें मिल रहा है। इसके साथ ही यह वैभवमयी रत्नमाला तुम्हें भेंट दी जा रही है। नचिकेता! अब तीसरा वर माँगो।'

"भगवन् ! कुछ लोग कहते हैं, कि 'मरनेके बाद भी जीवका अस्तित्व रहता है।' कुछ लोगोंका कहना है कि 'नहीं रहता।' मैं आपसे इस प्रश्नका निर्णय कराना चाहता हूँ। यही मेरेलिए तीसरा वर है।"

नचिकेताकी यह बात सुनकर यमराज स्तब्ध रह गये। वे बोले : 'नचिकेता ! यह बड़ा सूक्ष्म विषय है। देवताओंको भी इसके सम्बन्धमें संशय हुआ था, पर वे किसी निर्णयपर नहीं पहुँचे। तुम इसके बदले दूसरा वर माँग लो, या इसे मुझे वापस लौटा दो। इसके लिए मुझपर दबाव न डालो।'

यों कहकर यमराजने नचिकेताके समक्ष नाना प्रकारके प्रलोभन रखे : 'सौ वर्षकी आयुवाले पुत्र और पौत्र ले लो। बहुत-से पशु (गोधन) हाथी, घोड़े सुवर्णकी राशि, भूमण्डलका विशाल साम्राज्य और जितने वर्षतक जीवित रहना चाहो, उतनी बड़ी आयु प्राप्त करो। अपार धन-सम्पत्ति, चिरजीवन, कामेश्वरता, मर्त्यदुर्लभ भोगराशि, संगीतकुशल अप्सराएँ सब कुछ ले लो। इन स्वर्गीय सुन्दरियोंसे अपनी सेवा कराओ। किन्तु यह न पूछो कि मृत्युके बाद जीवात्मा रहता है या नहीं ?'

'अन्तक ! सारे भोग क्षणभंगुर हैं। वे मानवकी सम्पूर्ण इन्द्रियोंके तेजको क्षीण कर डालते हैं। इसके सिवा समस्त जीवन, कितने ही शत वर्षोंका क्यों न हो, अल्प ही है। अतः ये हाथी-घोड़े, रथ तथा ये स्वर्ग-सुन्दरियोंके नाच-गाने आपके ही पास रहें। मनुष्यको धनसे तृप्त नहीं किया जा सकता। आपका दर्शन हो गया तो मुझे धन भी मिल ही जायगा। जबतक आपका शासन है, तबतक हम जीवित भी रह सकेंगे। यह सब मेरेलिए प्रार्थनीय नहीं है। मेरे माँगने योग्य वर तो एक यही है। आप जैसे अजर-अमर महात्माओंका संग पाकर कौन मनुष्य रमणियोंकी सौन्दर्य-क्रीडा और आमोद-प्रमोदसे युक्त दीर्घ जीवनमें आसक्त होना चाहेगा ? नचिकेताको आत्म-ज्ञानामृतकी पिपासा है। वह इसके सिवा दूसरी कोई वस्तु नहीं स्वीकार कर सकता।'[1]

यमराजने देखा, नचिकेता लौकिक और पारलौकिक भोगोंसे सर्वथा उदासीन हैं। इनमें पूर्ण विवेक विद्यमान है। ये शम-दमादि साधनोंसे सर्वथा सम्पन्न हैं और इनमें तीव्र मुमुक्षा की प्रच्छन्न अग्नि तेजीसे धधक रही है, तब उन्हें उनकी ज्ञान-पिपासाकी शान्तिके लिये ज्ञानामृतकी वर्षा करनी पड़ी।

---

१. श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत्सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः।
अपि सर्वं जीवितमल्पमेव तवैव वाहास्तव नृत्यगीते॥
न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो लप्स्यामहे वित्तमद्राक्ष्म चेत्त्वा।
जीविष्यामि यावदीशिष्यसि त्वं वरस्तु मे वरणीयः स एव॥
अजीर्यताममृतानामुपेत्य जीर्यन्मर्त्यः क्वधःस्थः प्रजानन्।
अभिध्यायन् वर्णरतिप्रमोदानतिदीर्घे जीविते को रमेत॥
यस्मिन्निदं विचिकित्सन्ति मृत्यो यत्साम्पराये महति ब्रूहि नस्तत्।
योऽयं वरो गूढमनुप्रविष्टो नान्यं तस्मान्नचिकेता वृणीते॥

यमराजने कहा—'नचिकेता ! संसारमें दो वस्तुएँ हैं श्रेय और प्रेय। ये दोनो मनुष्यको अपनी ओर खींचती हैं। जो श्रेयको अपनाता है उसका कल्याण होता है। किन्तु जो प्रेयका वरण करता है, वह परमार्थसे भ्रष्ट हो जाता है। श्रेय नाम है मोक्ष या परमात्माकी प्राप्तिके उपायका। प्रेय कहते हैं, संसारमें प्रिय लगनेवाले भोगोंकी प्राप्तिके साधनको। ये दोनों मनुष्यके सामने आते हैं। मनुष्योंमें भी दो श्रेणियोंके लोग हैं : धीर और मन्द। धीर (विवेकी) पुरुष विवेक करके प्रेयके मुकाबलेमें श्रेयका वरण करते हैं, किन्तु मन्दमति मानव लौकिक योग-क्षेमकी इच्छासे प्रेयको ही अपनाता है। मैंने तुम्हारी परीक्षा करके देख ली। तुम धीर, विवेकी और वैराग्यवान् हो। अधिकांश मनुष्य जिस धन-सम्पत्तिके भँवरमें फँस जाते हैं, उसमें तुम नहीं फँसे। तुमने सम्मुख प्राप्त समस्त भोगोंको समझ-बूझकर ठुकरा दिया। अतः तुम आत्मतत्त्व-श्रवणके सर्वोत्तम अधिकारी हो।

'विद्या और अविद्या, ये दोनों एक दूसरेके विपरीत हैं। अविद्या भोगोंमें फँसानेवाली है तो विद्या ज्ञानका प्रकाश देती है। तुम विद्याके अभिलाषी हो; क्योंकि लुभावने भोग तुम्हें लुभा नहीं सके। अविद्याग्रस्त जीव नाना योनियोंमें जन्म-मरणके कष्ट भोगते हैं, ठीक वैसे ही, जैसे अन्धेकी पीछे जानेवाले अन्धे लक्ष्यतक न पहुँचकर दर-दरकी ठोकरें खाते हैं। धनके मोहसे अन्धे होकर प्रमादमें पड़े मूर्खको पारलौकिक उन्नतिका साधन नहीं सूझता। परलोककी सत्तापर विश्वास न करनेवाले नास्तिक बार-बार मेरे वशमें आते हैं। आत्म-तत्त्वकी वार्ता बहुतोंको तो सुननेको भी नहीं मिलती। बहुत-से लोग सुनकर भी उसे समझ नहीं पाते। आत्मतत्त्वका वक्ता, उसकी उपलब्धि करनेवाला तथा सद्गुरु द्वारा उसका उपदेश पानेवाला ज्ञाता भी आश्चर्यरूप है, दुर्लभ है। आत्मा सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म होनेके कारण अत्यन्त दुर्ज्ञेय है। नचिकेता ! तुम्हें जो बुद्धि प्राप्त है, वह शुष्क तर्कसे मिलनेवाली नहीं। मैं चाहता हूँ, तुम-जैसा जिज्ञासु मुझे मिला करे। कर्मफल अनित्य है। कर्मके फलसे मुझे जो यह पद प्राप्त हुआ है, वह भी स्थिर नहीं है।'

यमराजके वचनोंसे प्रोत्साहित हो नचिकेताने पूछा : 'भगवन् जो धर्म और अधर्मसे, कृत और अकृतसे तथा भूत, वर्तमान और भविष्यसे भी परे है, वह तत्त्व आप मुझे बतावें।

यमराजने उत्तर दिया : 'वेद जिसका वर्णन करते हैं, तप जिसकी ओर लक्ष्य कराते हैं और जिसे पानेके लिए लोग ब्रह्मचर्यका अनुष्ठान करते हैं; वह पद मैं संक्षेपसे बताता हूँ। वह है 'ॐ' यह एकमात्र अक्षर।[1] यह प्रणव परमात्मतत्त्वका वाचक है। यह अक्षर ही ब्रह्म और परब्रह्म है। इसे तत्त्वतः जान लेनेपर जिसे जो चाहिए, वह मिल जाता है। परमात्माकी प्राप्तिके सब प्रकारके आलम्बनोंमें यह सबसे श्रेष्ठ है। यही परम आलम्बन है। जो साधक

---

१. सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद् वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ॥(कठ० १.२.१५)
गीता अध्याय ८ के ११-१२ श्लोकमें इसी भावको थोड़े-से शब्दान्तरके साथ किया गया है।

श्रद्धा और प्रेमपूर्वक इसे जानकर अपनेको इसपर निर्भर कर देता है, वह परमात्माकी प्राप्तिका परम गौरव-लाभ करता है।

इस उपदेशके पश्चात् यमराजने इस प्रकार आत्माके स्वरूपका निरूपण किया :

'मेधावी आत्मा न उत्पन्न होता है, न मरता है। वह न तो किसी अन्य कारणसे उत्पन्न हुआ है और न स्वतः ही कुछ बना है (रूपान्तरित हुआ है)। यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत और पुरातन तथा है शरीरके मारे जानेपर भी स्वयं नहीं मरता। यदि मारनेवाला आत्माको मारनेका विचार करता है और मारा जानेवाला उसे मारा गया समझता है, तो वे दोनों ही उसे नहीं जानते, क्योंकि वह न तो मारता है और न मारा जाता है।' (कठोप० १.२.१८-१९ तथा गीता २.१९-२०)।

'यह अणुसे भी अणु और महान्से भी महान् आत्मा जीवकी हृदयरूप गुहामें स्थित है। निष्काम पुरुष अपनी इन्द्रियोंके प्रसादसे आत्माकी उस महिमाको देखता है और शोकरहित हो जाता है। यह एकत्र बैठा हुआ भी दूरतक चला जाता है, सोता हुआ भी सब ओर पहुँचता है। मद (हर्ष) से युक्त और मदसे रहित उस आत्मदेवको भला मेरे सिवा दूसरा कौन जान सकता है? जो शरीरोंमें शरीररहित, अनित्योंमें नित्यस्वरूप है, उस महान् सर्वव्यापक आत्माको जानकर बुद्धिमान् पुरुष शोक नहीं करता। यह आत्मा न तो प्रवचनसे प्राप्त होनेवाला है, न धारणा-शक्तिसे अथवा न बहुश्रुत होनेसे ही प्राप्त हो सकता है। जिसको ही यह स्वीकार कर लेता है, उसीके द्वारा प्राप्त किया जा सकता है, उसके प्रति यह आत्मा अपने स्वरूपको निरावृत (प्रकाशित) कर देता है। जो दुराचारसे निवृत्त नहीं है, जिसकी इन्द्रियाँ अशान्त और चित्त चञ्चल है, जिसका मन एकाग्र नहीं है, वह इस आत्माको सूक्ष्मबुद्धिके द्वारा भी नही पा सकता।'

'आत्मा दो हैं : १, प्राप्त करनेवाला और २. प्राप्तव्य—गन्ता और गन्तव्य। शुभकर्मोंके फलस्वरूप मानवशरीरमें परब्रह्मके उत्तम निवासस्थान बुद्धिरूप गुहामें छिपे हुए तथा ऋत (अनिवार्य कर्मफल) का पान (उपभोग) करनेवाले दो तत्त्व हैं, जो छाया और धूपकी भाँति एक दूसरेसे भिन्न हैं। उनमेंसे एक जीवात्मा है और दूसरा परमात्मा। अवश्य ही उन दोनोंके भोगमें महान् अन्तर है। परमात्मा असङ्ग और अभोक्ता है। अभोक्ताका भोजन अजन्माके जन्मकी भाँति लीलामात्र है।'

अब रथ आदिका रूपक देकर आत्मतत्त्वको समझानेका प्रयत्न करते हैं : 'आत्माको रथी जान, शरीरको रथ समझ, बुद्धिको सारथि जान और मनको लगाम समझ। विवेकी जन इन्द्रियोंको घोड़े बताते हैं; विषय उनके लिए मार्ग या सड़कें हैं। इन्द्रिय एवं मनसे युक्त आत्माको भोक्ता कहा जाता है। अविवेकिनो बुद्धिके अधीन इन्द्रियाँ उसी प्रकार नहीं रहतीं जिस प्रकार सारथिके अधीन दुष्ट घोड़े। जो बुद्धि-सारथि कुशल और समाहितचित्त होता है, उसके अधीन इन्द्रियाँ उसी तरह रहती हैं, जिस तरह सारथिके अधीन अच्छे घोड़े। अविवेकीको संसारकी और विवेकीको परमपदकी प्राप्ति होती है। इन्द्रियोंसे उनके विषय, विषयोंसे मन, मनसे

बुद्धि, बुद्धिसे महत्तत्त्व, महत्तत्त्वसे अव्यक्त (मूल प्रकृति) और अव्यक्तसे पुरुष उत्कृष्ट है। पुरुषसे उत्कृष्ट कुछ नही है। वही परा काष्ठा है, परम गति है। सम्पूर्ण भूतोंमें छिपा हुआ आत्मा प्रकाशमें नहीं आता। सूक्ष्मदर्शी पुरुष अपनी तीव्र एवं सूक्ष्म बुद्धिसे ही उसे देख पाते हैं।'

'उसकी प्राप्तिका उपाय है—वाणीको मनमें, मनको बुद्धिमें, बुद्धिको महत्तत्त्वमें और महत्तत्त्वको शान्त आत्मामें लीन करें। लोगो! उठो, जागो। श्रेष्ठ पुरुषोंके पास जाकर ज्ञान प्राप्त करो। आत्मज्ञानका मार्ग दुर्गम है, उसपर चलना छुरेकी तीखी धारपर पैर रखना है। निर्विशेष आत्मज्ञानसे ही आत्मतत्त्वकी प्राप्ति होती है।'

'इन्द्रियाँ बहिर्मुख हैं। उनकी बहिर्मुखता आत्मदर्शनमें बहुत बड़ी विघ्न-बाधा है। अविवेकी और विवेकीके अन्तरको समझो। अविवेकी भोगोंके पीछे लगे रहते हैं। वे मृत्युके फैले पाशमें फँसते हैं। विवेकी पुरुष अमृतत्वको जानकर उस ध्रुवसत्यको अपनाते हैं, अध्रुव (नाशवान् भोग) की अभिलाषा नहीं करते। आत्मासे ही सब कुछ जाना जाता है; उससे अविज्ञेय यहाँ क्या शेष रहता है? आत्मज्ञ शोकसे पार हो जाता है। भयको जीत लेता है। ब्रह्मज्ञ पुरुष ही सर्वात्मदर्शी है। अरणीमें छिपी हुई अग्नि भी ब्रह्म ही है। प्राण भी ब्रह्म ही है। अद्वैत-आत्मदर्शी अमर है। भेददर्शी बार-बार मृत्युको प्राप्त होता है। हृदय-कमलमें भी ब्रह्म ही है। भेददृष्टिका बाध ही उत्तम है। अभेददर्शन ही सबके लिए अभीष्ट होना चाहिए। सबको सदा सर्वात्मा ब्रह्मका ही अनुसन्धान करना चाहिए। देहस्थ आत्मा ही जीवन है। समस्त उपाधियोंमें आत्मा ही प्रतिबिम्बित है। जैसे अग्नि, वायु, सूर्य एक ही रहते हुए समस्त भुवनमें प्रविष्ट हैं, वैसे ही सर्वभूतान्तरात्मा भी प्रत्येक रूपमें प्रतिबिम्बित है। साथ ही वह उन सबसे बाहर भी है।

'आत्मदर्शीको ही शाश्वत सुखकी उपलब्धि होती है, दूसरोंको नहीं। वह अनित्योंमें भी नित्यरूपसे स्थित है। बहुत-से चेतनोंमें एक चेतन होकर रहता है। अकेला ही बहुत-से जीवोंकी कामनाएँ पूर्ण करता है। वह आत्मदेव सबका प्रकाशक है। उसे सूर्य, चन्द्रमा आदि प्रकाशित नहीं कर सकते। ये सब तो उसीसे प्रकाशित होते हैं। संसाररूप अश्वत्थ-वृक्षका मूल ब्रह्म ही है। उसीके ज्ञानसे अमृतत्वकी प्राप्ति होती है। उसके भयसे अग्नि और सूर्य तपते हैं। उसीके भयसे इन्द्र, वायु और मृत्युदेव दौड़ते-भागते हैं। यदि जीते जी परमेश्वरका ज्ञान हो गया तो बेड़ा पार है, अन्यथा जन्म-मरणका चक्र चलता ही रहता है। सबकी उत्पत्ति आत्मासे ही सम्भव होती है, उस परमात्माको जानकर धीर पुरुष शोकसे पार हो जाता है। इसका रूप आँखोंमें नहीं आता। वह बुद्धि द्वारा मननरूप सम्यग्दर्शनसे जाना जाता है। इसे जाननेवाले अमर हो जाते हैं। जब पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ मनके साथ आत्मामें स्थित होती हैं और बुद्धि भी चेष्टाशून्य हो जाती है, उस अवस्थाको 'परम-गति' कहते हैं। उस सुस्थिर इन्द्रिय-धारणाका ही नाम 'योग' है। सद्बुद्धिसे ही आत्माकी उपलब्धि होती है। जब हृदयसे सारी कामनाएँ छूट जाती हैं, तब मरणधर्मा मानव अमर हो जाता और इसी जीवनमें ब्रह्मका अनुभव करता है। सम्पूर्ण वेदान्तका इतना ही आदेश है।'

निष्कामता

लगता है मनुष्य जीवनका हर काम
जो अपने लिए या दूसरोंके लिए
समर्पित करता है गुप्त या प्रत्यक्ष
उपकार या अपकार किसी भी रूप में क्यों न हो
इस सबको 'अहंकार' प्रेरित करता है
इसके पीछे या आगे अधिक या कम
महत्त्वाकांक्षाका भाव स्थित रहता है।
जिसकी अनुपस्थिति ही जीवनका अन्तिम लक्ष्य है।
'करने' से बदलकर 'होना' प्रत्यक्ष है।
जहां न अहंकार रहता है न महत्त्वाकांक्षा ही,
बस जीवनका अन्तिम स्वरूप रह जाता है।

श्री रामबहादुर पाण्डेय, एम० ए०

इस प्रकार उपदेश पाकर नचिकेता कृतार्थ हो गये। वे स्वयं ही कृतार्थ नहीं हुए, उनकी कृतार्थताके लिए जो कठोपनिषद्के रूपमें ज्ञानामृतकी अमन्द मन्दाकिनी प्रवाहित हुई और जिससे भगवान् श्रीकृष्णकी भगवद्गीता भी अनुप्राणित हुई है, उसे पाकर अनन्त कालतक मानव-जगत् कृतार्थ होता रहेगा। मानव-जीवनका परम लाभ आत्माके अमृतत्वका अनुभव करनेमें ही हैं। कठोपनिषद् अपौरुषेय श्रुतिका अभिन्न भाग है; इसके लिए आविर्भाव-कालकी विवेचना अपेक्षित नहीं है।

●

श्रीकृष्णकी अनुपम राजनीतिज्ञता

साहित्यवाचस्पति श्रीप्रभुदयाल मीतल.

★

श्रीकृष्णके अनुपम महत्त्वका मूल्यांकन अधिकतर उन्हें दिव्य-विभूति समझकर किया जाता है। उस स्थितिमें उनके अलौकिक गुणोंका जितना विशद वर्णन किया गया है, उसकी तुलनामें लौकिक विशेषताओंका बहुत ही कम कथन हुआ है। किन्तु श्रीकृष्ण अलौकिक गुणोंके साथ ही लौकिक विशेषताओंके भी भण्डार थे। वे लोककी समस्त विद्याओं और कलाओंमें पारंगत थे। ऐसी ही एक लोकविद्या राजनीति है, जिसमें विज्ञता प्राप्त करनेवाला व्यक्ति ही राज्यका कुशल नेता और राष्ट्रका सफल कर्णधार सिद्ध हो सकता है। श्रीकृष्ण अपने समयके महान् राजनीतिज्ञ थे। उनकी अनुपम राजनीतिज्ञताके कारण ही उस कालके शक्तिशाली अधर्मी राजाओंका अन्त हुआ और धर्मराज्यकी स्थापना।

श्रीकृष्णके राजनैतिक जीवनका आरम्भ उनकी किशोरावस्थामें ही उस समयसे आरम्भ होता है, जब वे व्रजकी ग्रामीण गोप-बस्तीमें अपना बाल्यकाल व्यतीतकर मथुरामें वहाँके दुराचारी राजा कंसके निमन्त्रणपर आये थे। कंसने उन्हें मारनेका कुटिलतापूर्ण षडयन्त्र किया था। किन्तु कृष्णने अपने अद्भुत बल-पराक्रमसे स्वयं कंसको ही उसके सँगी-साथियोंके साथ परलोक भेज दिया। वे चाहते तो स्वयं मथुराके राजा बन सकते थे, अथवा अपने पिता वसुदेवजी को राजा बना सकते थे। किन्तु उन्होंने वैसा न कर उस समयके सर्वाधिक वयोवृद्ध राजपुरुष उग्रसेनको राज्यासीन किया। उग्रसेन जहाँ कंसके पिता थे, वहाँ श्रीकृष्णके नाना भी थे। उनके राज्यप्रमुख बननेसे जहाँ कंसके पक्षपातियों द्वारा विद्रोह करनेकी आशंका समाप्त हो गयी, वहाँ कृष्णके सँगी-साथी भी सन्तुष्ट हुए। श्रीकृष्णकी सफल राजनीतिका वह प्रथम प्रयोग था।

कंसका श्वसुर जरासंध था, जो उस कालके अत्यन्त शक्तिशाली मगध-साम्राज्यका अधिनायक था। उसने अपने दामाद कंसकी मृत्युका बदला लेनेके उद्देश्यसे मथुरा राज्यकी ओर कूच करनेका उपक्रम किया। जरासंधकी अपार सेनाने मथुरा नगरको चारों ओरसे घेरकर उसपर प्रबल वेगसे आक्रमण कर दिया। मागधी सेनाकी तुलनामें यादव-सेना नितान्त अपर्याप्त थी, किन्तु कृष्णने अपनी राजनैतिक कुशलताका परिचय देते हुए छापामार युद्ध द्वारा शत्रुको परेशान कर दिया। जरासंधकी सेनामें खाद्य-सामग्रीका अभाव होने लगा और नयी रसद प्राप्त करनेमें बाधा उपस्थित हो गयी। फलतः जरासंधको विफल-

मनोरथ हो मगध वापस जाना पड़ा। पुराणोंसे ज्ञात होता है कि जरासंधने अठारह बार मथुरापर आक्रमण किया, किन्तु हर बार उसे कृष्णकी राजनैतिक सूझ-बूझके कारण निराश होकर वापस लौटना पड़ा।

अन्तिम बार उसने बड़ी भारी तैयारीके साथ आक्रमण किया। उस समय उसने कई अन्य राजाओंको भी अपनी सहायताके लिए बुलाया। ऐसे सहायकोंमें एक कालयवन भी था, जो अपनी बहुसंख्यक अनार्य-सेनाके साथ जरासंधकी सहायताके लिए आया था। उस अभियानमें एक ओरसे जरासंध और उसके साथी राजाओंकी अपार सेनाओंने तथा दूसरी ओरसे कालयवनके दुर्दान्त सैनिकोंने मथुराकी यादव-सेनापर भीषण आक्रमण किया।

जरासंधके साथ होनेवाले पिछले युद्धोंमें यद्यपि यादवोंकी विजय हुई थी, तथापि उनके जन और धनकी अपरिमित हानि भी हुई थी। मथुरा-राज्यके अनेक प्रसिद्ध वीर उन युद्धोंमें काम आ चुके थे। फिर निरन्तर युद्धोंके कारण कृषि करना कठिन हो गया था तथा उद्योग-व्यापार भी चौपट हो गये थे। इस बारका आक्रमण पिछले सभी आक्रमणोंसे भीषण था, क्योंकि उसमें जरासंधके साथ ही कालयवनकी सेनासे भी मोर्चा लेना था। उस स्थितिमें यादवोंकी अल्पसंख्यक और साथ ही क्षतिग्रस्त सेनाके लिए सफलतापूर्वक प्रतिरोध करना सम्भव नहीं था।

उस संकटपूर्ण विषम परिस्थितिसे त्राण पानेका उपाय सोचनेके लिए शूरसेन गणराज्यके सभी यादव-वर्गोंके प्रमुख नेता एकत्र हुए। उनमेंसे अधिकांशने जहाँ साहसपूर्वक प्रतिरक्षा करनेके उपाय सुझाये, वहां कुछ लोगोंने निराशा भी प्रकट की। श्रीकृष्णने तत्कालीन स्थितिसे निबटनेके लिए एक अद्‌भुत राजनैतिक निर्णय लिया। उन्होंने समस्त यादव-नेताओंको सम्बोधित करते हुए कहा : 'जरासंघने मुझसे व्यक्तिगत वैर मान लिया है। वह तबतक शान्त होकर बैठनेवाला नहीं है, जबतक मैं मथुरामें रहूँगा। फलतः मैं अभी मथुरा छोड़कर सुदूर द्वारकाकी ओर चला जाऊँगा, जहाँ जरासंधका पहुँचना सम्भव नहीं है। उससे वर्तमान संकट सदाके लिए समाप्त हो जायेगा।'

कृष्णका उक्त कथन सुनकर सब लोग बड़े दुःखी हुए, किन्तु उस समयकी परिस्थितिमें वही वांछनीय समझा गया। फलतः उग्रसेन, वसुदेव, बलराम, अक्रूर, आहुक और उद्धव प्रभृति अन्धक-वृष्णिसंघके अनेक नेतागण अपने-अपने वर्गोंको लेकर कृष्णके साथ अपनी जन्मभूमिका परित्यागकर द्वारकाकी ओर चल पड़े। उसके पूर्वकी दिशासे आनेवाली अपार मागधी सेनासे तो यादवोंका संघर्ष टल गया, किन्तु कालयवनकी सेनासे फिर भी उनका सामना हो गया। कृष्णने युक्तिपूर्वक प्रायः सभी यादवोंको द्वारकाकी ओर भेज दिया और आप अपने थोड़ेसे साथियोंके साथ कालयवनसे निबटनेको रह गये। कृष्ण और उनके साथी छापामार युद्धकलामें अत्यन्त प्रवीण थे। वे कालयवनकी बहुसंख्यक सेनासे लुक-छिपकर युद्ध भी करते जाते और द्वारकाकी ओर द्रुतगतिसे बढ़ते भी जाते। कालयवन अपनी विशाल सेनासहित उनका पीछा करता रहा। इस प्रकार श्रीकृष्ण लड़ते और आगे बढ़ते हुए

कालयवनको उस स्थानकी ओर ले गये, जहाँ सूर्यवंशके प्रतापी महाराज मुचकुन्द विश्राम कर रहे थे। कृष्णने राजनीतिज्ञतापूर्वक मुचकुन्द द्वारा कालयवनका संहार करा दिया और आप अपने साथियोंसहित कुशलपूर्वक द्वारका पहुँच गये।

श्रीकृष्णके राजनैतिक जीवनका प्रथम भाग सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। दूसरा भाग द्वारकामें आरम्भ हुआ। उसका विशद वर्णन महाभारतमें मिलता है। यदि यह कहा जाय कि श्रीकृष्णकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण राजनैतिक गति-विधियोंका महाभारत अक्षय-कोश है, तो इसमें कोई अत्युक्ति न होगी। उससे ज्ञात होता है कि किस प्रकार श्रीकृष्णने द्वारकामें अत्यन्त शक्तिशाली गणराज्यकी स्थापना कर उसके द्वारा अपनेको तत्कालीन राजपुरुषोंकी प्रथम पंक्तिमें प्रतिष्ठित किया था। उन्होंने साम, दाम, दण्ड, भेद द्वारा उस समयके सभी अत्याचारी राजाओंको समाप्त कर दिया और अन्तमें महाभारतके युद्धमें अन्यायी कौरवोंके विरुद्ध पांडवोंके न्यायपक्षका समर्थन करते हुए उन्हें विजयी बनाया।

महाभारतका वह भयंकर संग्राम केवल अठारह दिनोंतक चला, किन्तु उस कालकी समुन्नत युद्धकला और अत्यन्त परिष्कृत अस्त्र-शस्त्रोंके कारण उस अल्पकालमें ही जैसा भीषण जन-संहार हुआ, वैसा इतिहासमें दूसरा नहीं मिलता। दोनों पक्षोंके बहुसंख्यक राजागण अपनी असंख्य सेनाओंके साथ महाकालकी बलि-वेदीपर जूझ मरे थे! श्रीकृष्णने उस विनाशकारी युद्धको टालनेका अन्तिम क्षणतक प्रयत्न किया, किन्तु कौरवोंके दुराग्रहके कारण उन्हें सफलता नहीं मिली। कौरव-गण शासनारूढ़ होनेके कारण समस्त कुरुराज्यके प्रभूत साधन जैसे विपुल सेना, कोष और शस्त्रागार आदिसे सम्पन्न थे। उनके पक्षपाती राजाओंकी संख्या भी अधिक थी। पांण्डवोंके राज्यच्युत होनेसे उनके साधन अपर्याप्त थे। उनका साथ कतिपय न्यायप्रिय राजाओंने ही दिया था। उनके सबसे प्रमुख साथी कृष्ण थे, किन्तु उन्होंने अकेले और निरस्त्र रहकर ही युद्धमें सम्मिलित होनेका निश्चय किया था।

युद्धके अवसरपर अनेक बार ऐसे प्रसंग उपस्थित हुए, जो पांडवोंका सर्वनाश कर सकते थे। किन्तु श्रीकृष्णके अद्भुत रण-कौशल, अपूर्व बुद्धिबल और सबसे अधिक उनकी अनुपम राजनीतिज्ञताने कौरवोंको पराजित और पांडवोंको विजयी बनाया। उसके फलस्वरूप अन्यायी, अत्याचारी एवं निरंकुश शासनका अन्त हुआ और धर्मराज्यकी स्थापना हुई। उससे भारतमें एक ऐसे नये राष्ट्रका उदय हुआ, जिसने संस्कृति और सभ्यताके सभी क्षेत्रोंमें शताब्दियों-तक समस्त संसारका नेतृत्व किया। वह महत्त्वपूर्ण युगान्तर श्रीकृष्णकी सफल राज-नीतिज्ञतासे ही सम्भव हो सका।

●

राधाकी जीवन-ज्योति कृष्णमें मिल गयी

राधा ! राधा ! राधा !

कुमारी श्री उमा मौडवेल

★

राकाकी उस मादक रजनीमें जब यमुनाका जल कदम्बतरुओंके गिरे हुए पुष्पोंसे अपना शृङ्गार करके उपकूलके दोनों किनारोंसे टकराता आगे बढ़ रहा था; चन्द्रिका-स्नात वह वनप्रान्तर कृष्णकी मुरलीकी मोहक तानसे गूँज रहा था, शीतल समीरके झोकोंसे उनका पीताम्बर फहरा रहा था और उस सौन्दर्यसे प्रकृतिका कण-कण अनुप्राणित हो उठा था ।

राधाकी निद्रा भङ्ग हो गयी । शीतल पवनके साथ गवाक्षोंसे प्रवेश करनेवाली वह मादक तान सुनते ही राधा विमुग्ध हो उठी । वह वातायनसे बाहर झाँककर देखने लगी । दूर वृक्षोंपर, करीलकी झाड़ियोंपर, कदम्बपर, यमुनाकी थिरकती हुई चञ्चल उर्मि-मालाओंपर रूपहली चाँदनीका झीना आवरण उसके हृदयमें एक मादक सङ्गीत झंकृत करने लगा । मधुमयी वेला है । राधाने धीरेसे कपाट खोला और वेगसे यमुनाकी ओर बढ़ चली । पायलोंकी झनकार उस वंशीकी स्वरलहरीके लयके साथ ताल देती हुई अपूर्व सङ्गीतकी सृष्टि कर रही थी ।

यमुनाके तटपर कदम्बके तले त्रिभंगी मुद्रामें श्रीकृष्ण अपने होठोंसे वंशी लगाये तान-तानपर थिरकते खड़े थे । गलेमें वैजयन्ती माला, मस्तकपर मोरमुकुट और कटिमें पीताम्बर धारण किये हुए कृष्णका यह रूप कितना मादक, कितना मोहक था ! राधा आत्म-विभोर हो उठी उस दिव्य रागिनीको सुनकर ।

मुरलीकी मधुर तानकी झङ्कारसे आकृष्ट होकर अनेक गोपाङ्गनाएँ उस निःस्तब्धतामें धीरे-धीरे आ-आकर वहाँ एकत्र होने लगीं । उनके नूपुरोंकी झनक और चूड़ियोंकी खनक भी उस मादक वंशीकी स्वरलहरीके साथ गूँज उठी । धीरे-धीरे वे सभी प्रेमविभोर गोपांगनाएँ हाथसे हाथ मिलाकर राधा और कृष्णके चारों ओर नृत्य कर उठीं ।

स्निग्ध-धवल चन्द्रज्योत्स्नाको रूपहली चादर ओढ़कर यमुनाकी उर्मिमालाएँ भी थिरक उठीं । वृक्ष भी तन्मय होकर पल्लवोंकी मर्मर-ध्वनि करते हुए ताल देने लगे । करीलकी झाड़ियाँ भी प्रमत्त होकर झूम उठीं । उस स्वर्गीय संगीतसे मानो सम्पूर्ण सृष्टि सम्मोहित हो उठी ।

राधाके साथ-साथ कृष्ण भी उन सुन्दरी गोपांगनाओंके मध्य आकर नृत्य करने लगे। एक विचित्र सम्मोहन चारों ओर व्याप्त हो चला। उस महारासकी अलौकिक शोभा देखकर उस दिव्य सङ्गीतसे गूँजती हुई वनतटी, जड़ और चेतन सभी मुग्ध हो चले। उस मधुमयी वेलाने सबको आनन्दके उस लोकमें पहुँचा दिया, जहाँ केवल तन्मयताका ही अखण्ड साम्राज्य था।

× × × ×

'मथुरासे कोई कंसका सन्देश लाया है।'

'सन्देश ?'

'हाँ ! कंसने नन्दको, बलदाऊको और कृष्णको मथुरा बुलाया है।'

'कंसने ?'—राधाके स्वरमें निःसीम कम्पन भरा हुआ था।

'हाँ। उनकी आज्ञाका कैसे उल्लङ्घन किया जा सकता है।'—गोपीकी वाणीमें विषादपूर्ण विवशता भरी थी।

'अत्याचारी कंसने कृष्णको क्यों बुलाया ?'

'यह तो नहीं जानती, पर कंस उनका बाल भी बाँका नहीं कर सकता।'—दृढ़तापूर्वक गोपीने उत्तर दिया।

'कृष्ण चले जायँगे। इसकी कल्पना भी असह्य है।'—राधा सिसक उठी। गोपीके नेत्रोंमें भी अश्रु छलक चले।

'कृष्ण अक्रूरके साथ मथुरा चले जायँगे यह सूचना क्षणभरमें सम्पूर्ण गोकुलमें बिजली बनकर व्याप्त हो गयी। विकल गोपांगनाएँ, ग्वाल-बाल सभी अपना-अपना कार्य छोड़कर नन्दके द्वारपर एकत्र होने लगे। अवरुद्ध कंठके साथ पगोंमें शिथिलता, हृदयोंमें विकलता, नेत्रोंमें पानीको बरसात लिये सभी नन्दके द्वारपर रथके सम्मुख मस्तक झुकाये आ खड़े हुए। यह कैसा अनभ्र वज्रपात !

नन्द और उनके साथ मथुरा जानेवाले सब गोप अपने-रथ और लढ़िए सजा-सजाकर तैयार खड़े थे। आज उनके द्वारपर जैसे करुणाका सागर उमड़ पड़ा था। कृष्ण बाहर आये। उनके सिरपर मोर-मुकुट, मस्तकपर गोरोचनका तिलक, गलेमें वैजयन्ती माला, कटिमें पीताम्बर और हाथमें मुरली सुशोभित हो रही थी।

बाहर आकर कृष्णने प्रत्येक गोपका आलिंगन किया और पन्द्रह दिनमें लौट आनेका आश्वासन दिया। आँसू बहाती गोपियाँ कृष्णसे शीघ्र लौटनेका आग्रह किये जा रही थीं। राधा सिसक रही थी, उसकी वाणी अपना सारा संयम खो चुकी थी। यशोदा आगे बढ़ी उसने कृष्णके मस्तकपर हाथ रखकर स्नेहाश्रुओंके साथ उन्हें आशीर्वाद दिया।

सभी रो रहे थे, सिसक रहे थे और उधर नन्द, गोपगण बलदाऊ और कृष्णको लिये दिये अक्रूरका रथ मथुराके मार्गपर आगे बढ़ चला। जबतक वह दृष्टिपथसे ओझल नहीं हो गया, तबतक सभीकी दृष्टि उसी ओर बँधी रही। दूर जानेपर रथके घोड़ोंकी टापोंसे

उड़ती हुई धूलमें वह दृश्य भी शान्त और विलुप्त हो गया। राधाकी 'आह' हृदय चीरकर निकल पड़ी और अनन्त आकाशमें विलीन हो गयी। उसने झुककर कृष्णके चरण-चिह्नकी रज उठा मस्तकसे लगायी और फिर सुबक-सुबककर रो उठी।

हृदयको विह्वल बना देनेवाले उस दृश्यको देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो करुणा ही साकार हो उठी हो। गोकुलकी समस्त श्री ही समाप्त हो गयी। चारों ओर सूनापन था। यमुनाका तट करीलके कुंज, कदम्ब वृक्षोंकी सुहावनी छाँह, दूरतक फैली हुई वनतटी सभी सूने थे। न वहाँ चहल-पहल थी, न कलरव-कोलाहल। सब जैसे निर्जीव, निष्प्राण हो गये थे।

× × ×

दिन व्यतीत हो चले। मन्दिर, कुंज, यमुनातट, वनस्थली सभी सूने ही बने रहे। कृष्ण नहीं लौटे, नहीं ही लौटे। नन्द, गोप सभी लौट आये, किन्तु कृष्ण और बलराम वहीं रह गये। नन्द और गोपोंने आकर सूचना दी : कृष्णने मुष्टिक और चाणूरका वध किया, कुवलयापीड़ हाथीको समाप्त कर डाला, कंसको भी सभामें पछाड़ मारा, वसुदेव और देवकी बन्दीगृहसे मुक्त हो गये और महाराज उग्रसेनने पुनः शासन-सूत्र अपने हाथमें सँभाल लिया।' गोकुल और वृन्दावनमें प्रसन्नताकी लहर दौड़ गयी। 'अब काऊ कौ संसा नाय रह्यो' 'पापी कंसउ नाय रह्यो।' यह हर्ष, यह आनन्द क्षणिक था। सभीका हृदय रो रहा था : 'कन्हैया नाय आयौ।'

'क्या अब कभी नहीं लौटेंगे? क्या उनका मोहक दर्शन फिर कभी नहीं होगा'। गोकुलवासियोंका यह प्रश्न चारों ओर गूँज उठता; प्रतिध्वनित होता और निरुत्तरित ही रह जाता। यशोदाके आँसू सूख चुके थे। हृदयसे निकलनेवाली आहें मानो सम्पूर्ण गोकुलको सदैवके लिए धूमिल बना चुकी थीं। राधाके निःश्वास अनन्त अन्तरिक्षमें विलीन हो चुके थे। उसके अश्रुपूरित नेत्र अब भी निरन्तर मार्गकी ओर टकटकी लगाये रहते। सब कुछ तो वही था, किन्तु सूना और उदास।

समयकी शिलाओंपर वर्ष लुढ़कने लगे। मास आये और चले गये। ऋतुएँ भी अपना-अपना शृंगार करके चली गयीं। कृष्णकी लीलाओंकी वे सुखद और मादक स्मृतियाँ ही साकार हो उठतीं। और तब राधाके नेत्रोंसे अश्रु टपक पड़ते।

× × ×

'बड़ा ही सुन्दर चित्र!' मुग्ध होकर सत्यभामा बोल पड़ी। यमुनाके उपकूलमें कदम्ब वृक्षके नीचे कृष्ण तन्मय हो वंशी बजा रहे हैं। माथेपर मोरमुकुट, गलेमें वैजयन्ती माल, कटिमें पीताम्बर और अधरोंपर मुरली सुशोभित हो रही है।

सम्पूर्ण वनतटी मानो उस स्वर्गीय स्वरलहरीसे आत्मविभोर हो शान्त है। यमुनाका जल मानो ताल देता हुआ, नृत्य करता हुआ आगे बढ़ रहा है। वातायनसे आता हुआ

शीतल पवन धीरे-धीरे कक्षमें प्रवेश कर रहा था। सागरकी उत्ताल तरंग-मालाओंका रव सत्यभामाके उस सुन्दर प्रकोष्ठमें गूँज रहा था। 'जो सौन्दर्य, जो भव्यता, जो लावण्य इस रूप, इस वेशमें है वह द्वारिकाधीशकी छविमें कहाँ?' सत्यभामाने मुग्ध हो मन ही मन कहा। 'दूरतक चांदनी बिखरी हुई है, मानो सम्पूर्ण गोकुलने चन्द्रकी रजत-किरणोंसे अपना श्रृङ्गार किया हो। बड़ी ही मादक वेला है। कितना सुन्दर चित्र है। आह! मैं नहीं थी उस समय इनके निकट।' भाव-विभोर सत्यभामा गद्‌गद कंठसे बोल उठी। 'इतने ध्यानसे क्या देख रही हो प्रिये?'—सत्यभामा चौंक पड़ी। उसने मुड़कर देखा, द्वारिकाधीश कृष्ण खड़े थे।

'आपका यह व्रजवासी रूप कितना मोहक और लावण्यमय है।'

कृष्णने झुककर चित्रको देखा।

'हाँ! सत्यभामा! वे दिन भी कितने सुन्दर थे! गोकुल और वृन्दावनके वे सुन्दर कुंज, करोलकी झाँड़ियां, यमुनाका तट, गोपबालकोंके साथ आँखमिचौनी और स्नेहमयी राधा क्या कभी विस्मृत हो सकती है?'—एक दीर्घ निश्वास मानो सागरके गर्जनके मध्य वहीं उठा और विलीन हो गया।

स्मृतियोंका प्रत्यावर्तन हुआ। महारासकी वह मधुर रात्रि! कृष्ण मानो विगत दिनोंके मध्य खो-से गये।

'राधा कौन?'—सत्यभामाकी वाणीमें जिज्ञासा थी।

'वृषभानुकी कन्या। बड़ी ही स्नेहमयी और सरल थी। गोपियाँ, राधा, गोप, यशोदा सबके निकट जो स्नेह मिला, वैसा स्नेह कहीं मिल नहीं पाया। कहीं मिल भी नहीं सकता।' किन्तु मथुरा आनेके उपरान्त मैं कभी जा ही नहीं सका। प्रेममय, स्नेहमय वातावरणके मध्य रहना भी तो सौभाग्यका चिह्न है।'—कृष्णकी वाणीमें कोमलता थी।

'तो क्या यहाँ आपको स्नेहमय वातावरण प्राप्त नहीं?'—सत्यभामाकी वाणीसे ईर्ष्या झलक रही थी।

'क्यों नहीं। यहाँ भी तुम्हारे निकट स्नेहकी शीतल छायाका अनुभव करता हूँ। किन्तु बाल्यावस्थाका वह निर्मुक्त जीवन, वह स्वच्छंद बिहार अब कहाँ।'—स्नेह-सिक्त कंठसे कृष्णने कहा। सत्यभामा शान्त थी।

'आप एकबार पुनः वही व्रजवासी रूप धारण कीजिये। वह रूप देखनेकी मेरा बड़ा लालसा है।'—सत्यभामाके स्वरमें आग्रह था।

'अब वह गोप-वेष मुझपर शोभा देगा?'—कृष्ण हँस पड़े।

'मेरी बहुत इच्छा है।'—सत्यभामाने पुनः आग्रह किया।

'तुम भी बालकों जैसा हठ करती हो! अब वह रूप!'

सत्यभामा अनमनी हो उठी। उसका आग्रह कृष्णने स्वीकार नहीं किया।

× × ×

कुरुक्षेत्रमें सूर्यग्रहण। गोकुल, वृन्दावनके सभी गोप-गोपियाँ जानेको उत्सुक हो उठे। वर्षों व्यतीत हो गये, युग व्यतीत हो गये, कहीं कोई उल्लास और आनन्द नहीं। जैसे जीवन ही नहीं है। वर्षों उपरान्त कुरुक्षेत्र जानेकी इच्छा जाग उठी। नन्दने वर्षों उपरान्त उठी हुई व्रजवासियोंकी इच्छा पूर्ण करनेका निश्चय किया। नन्द, यशोदा, गोप, गोपियाँ, राधा सभी प्रसन्न हो कुरुक्षेत्रकी ओर चल पड़े। उनकी प्रसन्नताका ठिकाना न रहा, जब उन्हें ज्ञात हुआ कि द्वारिकाधीश कृष्ण भी अपने राज-समाजके साथ वहाँ पधारे हैं। गोपोंके उल्लासका ठिकाना न था। माता यशोदाके हृदयमें वात्सल्यका अगाध सागर उमड़ पड़ा। राधा प्रेम-विह्वल हो उठी। वह जैसे आज अतीतकी सुखद घड़ियोंको अपने नेत्रोंके समक्ष देख रही थी। चन्द्रिका-धौत रजनी, यमुनाका रुपहला पुलिन, कदंबकी छाया और कृष्णका वह मोहक रूप उसके नेत्रोंमें समाया हुआ था।

× × ×

सांध्य गगन रक्ताभ हो उठा। दिशाएँ आरक्त थीं। चारों ओर मानो स्नेह और ममताका मधुर वातावरण परिव्याप्त था। 'राधा'—स्नेहसिक्त कण्ठसे निकला हुआ अपना नाम सुनकर राधा चौंक पड़ी। वर्षों पश्चात् उसके सम्मुख कृष्ण खड़े थे। कितने युग व्यतीत हो चुके थे। जिसकी स्मृति उसकी अहर्निश साधनाका केन्द्रबिन्दु थी—आज उसके सामने खड़े थे। राधाने नेत्र उठाये।

कृष्ण ? उसके कृष्ण कहाँ हैं ? नेत्रोंकी धूमिल ज्योतिने देखा—एक राजसी वेशभूषासे सज्जित एक महापुरुष ! उसके मुरलीधर कृष्ण कहाँ ? न वहाँ मोरमुकुट है, न वह वंशी। राधा हतप्रभ हो उठी।

'राधा' ! क्या तुमने मुझे नहीं पहचाना ?'—कृष्णकी वाणीमें कोमलता थी, स्नेह था।

वही कंठ, वही स्निग्धता, किन्तु वह रूप न था जिसकी आजतक उसने आराधन की थी। कृशकाय राधाकी धूमिल नेत्र-ज्योति अपने कृष्णको पहचान नहीं रही थी। आज यह नवीन रूप कैसा ?

'राधा ! आज इतने वर्षों पश्चात् मिला हूँ ! तुम चुप क्यों हो ?' कृष्णकी वाणीमें आश्चर्य था।

राधा के शुष्क कपोलोंपर अश्रु ढुलक पड़े। 'तुम्हारा आज यह नवीन रूप कैसा ? मैं तो तुम्हारे उसी रूपका दर्शन करना चाहती हूँ। वही रूप जो यमुनातटपर कदम्बके नीचे मुरलीकी मादकतासे सम्पूर्ण वनस्थलीको गुंजाये डालता था। मेरी धूमिल नेत्र-ज्योति तुम्हें इस रूपमें ग्रहण नहीं कर पा रही है !'—विषादपूर्ण स्वरमें राधाने उत्तर दिया।

'तुम्हारे लिए आज इतने वर्षों पश्चात् द्वारिकाधीश होनेपर भी मैं वही रूप धारण करूँगा।'—कृष्ण लौट पड़े।

× × ×

मस्तकपर मोरमुकुट, गलेमें वनमाल, कमरमें पीताम्बर, कन्धेपर उत्तरीय और हाथमें वंशी ! कृष्णका बहुत ही सुन्दर भव्यरूप था। सत्यभामाके कक्षमें प्रवेश किया। वह चौंक पड़ी। मन्त्रमुग्ध होकर क्षणभरके लिए देखती ही रह गयी।

'कितने दिनोंसे मेरी अभिलाषा आपको इसी रूपमें देखनेकी थी। कितने दिनों पश्चात् आज आपने मेरे आग्रहकी पूर्ति की। आपका यह रूप सचमुच बड़ा भव्य और स्वर्गीय है।'—सत्यभामाकी वाणीमें प्रशंसा थी।

कृष्णने आज बहुत दिनों पश्चात् मुरली धारण की थी। सत्यभामा उस दिव्य रूपपर मुग्ध थी। धीरे-धीरे रुक्मिणी आदि सभी पटरानियाँ उपस्थित हो गयीं। सभीकी वर्षोंकी उत्कट लालसा आज पूर्ण हो उठी।

'आज स्वामीका गोपरूप देखकर वृन्दावनकी कुछ मधुर कल्पना कर पा रही हूँ। रुक्मिणीकी वाणीमें मोहक आकर्षण था। 'आज आपने अनायास यह वेश कैसे धारण कर लिया।' सत्यभामाने सरल जिज्ञासा की।

'आज गोकुल वृन्दावनसे सब लोग ग्रहण नहाने आये हैं। पिता नन्द, माता यशोदा, सखा गोप तथा स्नेहमयी गोपियाँ आयी हैं। राधाका आग्रह था कि आपका दर्शन मुरलीधर रूपमें ही करूँगी।'—कृष्णने सरलतासे उत्तर दिया।

'सुना रुक्मिणी ! आज राधाका आदेश हुआ है। तभी तो यह वेश धारण किया। हम लोगोंके आग्रहका क्या मूल्य ? स्वामीके हृदयमें तो केवल एकमात्र राधाके ही लिए प्रेम है।'—सत्यभामाने ईर्ष्यासे मुख मोड़ लिया।

'उस गोपांगना राधामें ऐसी कौन-सी विशेषता है, जिसका आग्रह द्वारिकाधीशके लिए आदेश बन गया ?'—तीखे स्वरमें रुक्मिणीने पूछा।

कृष्णके मुखपर एक दिव्य गांभीर्य सुशोभित हो रहा था।

'चलो ! सब चलो। पवित्र-हृदया राधाको, उसके प्रेमको देखो। वह प्रेम नश्वर नहीं है। नश्वर, सांसारिक प्रेम तो कालकी अवधिमें खो जाता है। विरह उसे अपनी अग्निमें कभीका भस्म कर देता।

× × ×

'राधा !'

राधाने मुख उठाया ! आज वर्षों, युगों पश्चात् उसके कृष्ण उसके सम्मुख खड़े थे। वह अपनेको विस्मृत कर चुकी थी। वृन्दावनके कुञ्जोंमें गूँजनेवाली मुरलीकी वही तान उसे कर्णगत हो रही थी। उसके नेत्र मुँद चुके थे। एक दिव्य सौन्दर्य उसके मुखपर व्याप्त था।

धीरे-धीरे एक आलोक, एक ज्योति राधाके शरीरसे बाहर आयी और कृष्णमें समा गयी। आदिशक्तिने इतने वर्षोंके विरहके पश्चात् अपने उस विराट् पुरुषका समागम किया।

बालक ध्रुव

आचार्य श्री सीताराम चतुर्वेदी

*

'चल हट, बड़ा आया है राजकुमार बनकर महाराजकी गोदमें चढ़ने ! देख नहीं रहा है कि मेरा बेटा उनकी गोदमें बैठा है ?'

अपनी सौतेली माँ सुरुचिके मुखसे यह सुनते ही छोटा-सा बालक ध्रुव हक्का-बक्का हुआ खड़ा रह गया। उसकी समझमें नहीं आ रहा था कि उसने क्या अपराध किया है ! उसने एकबार बड़ी आशासे अपने पिता महाराज उत्तानपादकी ओर देखा और समझा कि वे तो इतने कठोर न होंगे। वे तो मुझे गोद में उठा लेंगे। मुझे चुमकारेंगे, पुचकारेंगे और मेरी पीठ थपथपायेंगे। गले लगाकर मेरे आँसू पोछेंगे ! पर जब उसने देखा कि महाराज भी छोटी रानी सुरुचिके सामने कुछ कह नहीं पा रहे हैं, तो वह छोटा-सा बालक फफककर रो उठा और उल्टे पैरों लौटकर अपनी माता महारानी सुनीतिकी गोदमें मुँह उठाकर हिचकियाँ भर-भरकर रोने लगा।

रानी सुनीतिने उससे बहुत पूछा, पर उसके रूँधे हुए गलेसे ऐसी सिसकियाँ निकल रही थीं कि कि कुछ कहते न बन पड़ रहा था। माताने जब दो घूँट जल उसके गलेमें डाला तब धीरे-धीरे रूआसे कण्ठसे उसने सब कथा सुबुकियोंमें कह सुनायी। महारानी सुनीति बहुत

रुक्मिणी, सत्यभामा आदि इस अलौकिक मिलनको मूलभावसे देखती ही रह गयीं ! यह वह आनन्दका लोक, था जहाँ केवल तन्मयता ही विहार करती है। सभी हार्दिक उल्लाससे पुकार उठीं—'राधा' ! 'राधा' !

और चारों ओर दिग्-दिगन्तसे गूँज उठा वही स्वर :

राधा ! राधा ! राधा !

●

समझदार थीं। उन्होंने समझते हुए कहा : 'बेटा, इसमें रोनेकी क्या बात है ? महाराजने तो तुम्हें कुछ कहा नहीं। भी वे तुम्हें प्यार भी करेंगे और गोदमें भी बैठायेंगे। तुम्हीं तो उनके बड़े पुत्र हो। तुम्हें नहीं तो किसे प्यार करेंगे ?'

इतना समझाने-बुझानेपर भी ध्रुवकी सुबुकियाँ न बन्द हो पायीं। रह-रहकर उसके जीमें यही कसक हो रही थी कि मेरे छोटे भाई उत्तमको तो महाराजने गोदमें बैठा लिया था, मुझे क्यों नहीं बैठाया ? सुनीतिने देखा कि ध्रुव किसी भी प्रकार चुप नहीं हो रहा है, तो उसने कहा : 'तुम महाराजकी गोदमें बैठनेके लिए क्या तरसे जा रहे हो ? तुम महाराजाओंके महाराज और सबके पिता भगवान्‌की गोदमें जा बैठने लिए क्यों नहीं उनका भजन करते ?'

यह सुनते ही छोटा-सा बालक ध्रुव भगवान्‌की खोजमें अकेले निकल पड़ा। वह क्या जानता था कि भगवान् कहाँ रहते हैं, कैसे हैं ! पर उसने जीमें ठान लिया कि जैसे भी होगा, भगवान्‌को ढूँढकर ही रहूँगा। जैसे कोई बच्चा संकटमें पड़कर अपनी माताको दुखी होकर पुकारता हुआ वनोंमें घूमने लगा।

नारदजीने इस बालकको देखा, तो उनका जी पिघल गया। उन्होंने बालकके निकट आकर कहा : 'बेटा, तुम घबराओ मत। मैं तुम्हें एक मन्त्र देता हूँ। मन लगाकर इसका जप करोगे तो भगवान् अपने आप तुम्हारे पास खिचे चले आयेंगे।'

फिर क्या था ? बालक ध्रुव कालिन्दीके तीरपर मधुवनमें तीनों समय स्नान करके पद्मासन लगाकर भगवान्‌का ध्यान करके जप करने लगा। जब ध्रुवको जप करते बहुत दिन बीत गये तब अचानक एक दिन देखता क्या है कि शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म धारण करते हुए भगवान् गरुड़पर चढ़े सामने आ पहुँचे हैं। उन्हें देखते ही बालक ध्रुव झपट कर उनके पैरोंमें लोट गया। भगवान्‌ने उसे उठाकर अपनी गोदमें बैठा लिया और कहा : जाओ, तुम उस ध्रुवलोकको चले जाओ जिसके चारों ओर सप्तऋषि-मण्डल, ग्रह, नक्षत्र और तारे चक्कर लगाते रहते हैं।' यह कहकर भगवान् वहीं अन्तर्धान हो गये।

जब उत्तानपादने सुना कि ध्रुव आ रहा है, तो वे धूम-धामसे उसका स्वागत करनेके लिए भागे, वहाँ आये और गोदमें उसे उठा लिये। महारानी सुनीति भी हर्षसे फूली न समायी :

इस प्रकार ध्रुवने अपनी सच्ची लगनसे भगवान्‌को भी अपने वशमें कर लिया। बहुत दिनोंतक इस पृथ्वीपर राज्यकर वे अन्तमें ध्रुवलोकको चले गये।

●

एकबार करवट तो बदलो !

एकबार करवट तो बदलो, सारा जग जयकार करेगा।

जब चट्टानें करवट लेतीं
नग-उपत्यका हिल जाती है।
लहरोंकी ठंढी करवटमें
प्रलय प्रमीषा हहराती है।

तुम चेतन अँगड़ाई ले लो, अग-जग हाहाकार करेगा।
एक बार करवट तो बदलो, सारा जग जयकार करेगा॥

सुधाकुंड दानवी-नाभिके
सोखो शोषक बाण चलाकर।
चामुंडाका भरो कलेवर
रक्तबीजका रक्त पिलाकर।

पौंड्र शंख दो फूँक भीमका, कौरव-दल चीत्कार करेगा।
एकबार करवट तो बदलो, सारा जग जयकार करेगा॥

हमें सरल प्रह्लाद समझकर
सतत तर्जना वे देते हैं।
नित्य हमारी मृदु ऋजुतापर
वे हँस-हँसकर रस लेते हैं।

खंभेसे फट पड़ो नृसिंहो! महादैत्य सीत्कार करेगा।
एकबार करवट तो बदलो, सारा जग जयकार करेगा॥

हम हिंसाके नहीं पुजारी
जन-जनमें यह प्रण भी भर दो।
'बिनु भय होय न प्रीति' मंत्रको
किन्तु विश्वमें मुखरित कर दो।

विष्णुगुप्तकी शिखा खोल दो, कौन छली प्रतिकार करेगा।
एक बार करवट तो बदलो, सारा जग जयकार करेगा॥

●

आत्मानं विद्धि

श्री राम बहादुर पाण्डेतय, एम० ए०

★

आज जब मानवके पास सुख और समृद्धिके साधनोंमें इतनी वृद्धि हो चुकी है, उसका जीवन दिनोंदिन बोझिल क्यों होता जा रहा है? उसकी आत्म-विपन्नता क्यों बढ़ती जा रही है? वह निरुद्देश्य-सा क्यों प्रतीत होता है? उसे पहलेसे अधिक प्रसन्न और आनन्दित होना चाहिए था, किन्तु वह उतना ही दुखी क्यों है?

आनन्द और प्रसन्नताकी अनुभूतिका उद्गम-स्थल उसका अपना अन्तर अन्धकारसे परिपूर्ण है, वहाँ प्रकाश नहीं है। वहाँ मृत्यु है, वहाँ जीनेका भाव नहीं है। वह जीना भूल गया है। मनुष्यका हृदय खोखला हो चुका है। उसमें कुछ भी ऐसा नहीं रहा जो उसके प्राणोंमें गतिका संचार कर सके। मानवने जितना अपनेको समृद्धिकी परतोंसे ढँकनेकी कोशिश की उसकी बेचैनी उतनी ही बढ़ गयी है। सत्य तो यह है कि वह समृद्धि नहीं, केवल अपनी दीनता भुलानेका उपाय है। लेकिन इन सबसे दीनता भुलायी नहीं जा सकती; क्योंकि दीनता है भीतर और उसे भुलाया जाता है बाह्य साधनोंसे! ऐसा कैसे हो सकता है, अन्तस्‌की प्यास और बाह्य जलसे बुझ जाय? अन्तस्‌की बेचैनी अन्तस्‌की समृद्धिसे ही दूर होगी।

इसके लिए हमें मानवको नङ्गा करना होगा। आजका मानव नङ्गा हो भी चुका है और नङ्गा होनेके अतिरिक्त और कोई भी उपाय नहीं है। कृत्रिम जिन्दगी जीते जीते अब मानव ऊब चुका है अब वह नङ्गा होना चाहता है। अब उसे नङ्गेपनसे घृणा नहीं है। उसकी यह बेचैनी उसे बना भी सकती है और बिगाड़ भी सकती है। यदि उसे सही दिशा मिलती है तो वह नये मानवकी आयाम-दिशा होगी, जो सारी मानवताको आनन्दको ओर अग्रसारित कर सकती है और दूसरी ओर उसकी गलत दिशा उसे मानवजातिकी समाप्ति जैसे भयंकर परिणामको भी दिखा सकती है, जिसका निर्णय करनेवाला भी शायद दूसरे जगत्‌का कोई प्राणी हो।

सही दिशा मिलनेपर यही मानव सत्यका साक्षात्कार कर सकता है। आत्मा आनन्द चाहती है, पूर्ण आनन्द। आनन्दसे सभी चाहोंकी समाप्ति हो जाती है। चाहके रहते आनन्द नहीं मिलता। चाह अभावका द्योतक है। यह अभाव राजा या रंक सभीमें समान ही रहता है, क्योंकि हम कुछ भी प्राप्त करलें फिर भी पानेके बाद होनेवाली प्रतीति पानेके पूर्ववाली

प्रतीतिसे भिन्न नहीं होती। अर्थात् जीवनमें अभाव किसी वस्तु, शक्ति या समृद्धिकी अनुपस्थितिके कारण नहीं होता, क्योंकि उन सबके मिल जानेसे वह मिटती नहीं। इसीलिए आत्मा सब अभावोंका अभाव चाहता है। जहाँ अभाव होता है वहीं बन्धन होता है, अतः अभाव ही दुख और बन्धन है। जहाँ अभाव नहीं है, वहाँ मुक्ति है। इसके लिए हमें मनुष्यके अन्तस्‌के अभावको हटाना, हृदयके अन्धकारको आलोकसे भर देना है। यह अन्तस्-समृद्धि स्वयंके भीतर ही उपलब्ध की जाती है। उसकी सम्भावना बीजरूपसे हमारे अन्दर विद्यमान है। उसे वृक्षमें रूपान्तरित करनेके लिए वातावरण देनेकी आवश्यकता है। मिट्टी, पानी, धूप, हवाके उचित सांनिध्यमें बीजका विकास वृक्षके रूपमें स्वयं उपलब्ध हो जाता है। इसी तरह आत्माकी सम्भावना वास्तविकतामें बदलना है। गांधीमें क्या था जो हममें नहीं है? विवेकानन्द, रामकृष्णमें कौन-सी ऐसी वस्तु थी जो हममें आज मौजूद नहीं है। वास्तवमें तो आत्माका गुण नहीं, स्वरूप ही आनन्द हैं। ये दोनों अलग नहीं, बल्कि एक ही हैं। सत्ता आत्माकी होती है और उसकी अनुभूति आनन्द है।

बड़े आश्चर्यकी बात है कि जब आत्मा और आनन्द दोनों अभिन्न हैं फिर भी मानव उस आनन्दसे वंचित है, इसका अर्थ यही हो सकता है कि वह चाहता ही नहीं आनन्दकी अनुभूति। उसे उसके लिए सच्ची आतुरता नहीं। वह उस आनन्दको पाना नहीं चाहता। आँखें सबके पास हैं, लेकिन अधिकतर अन्धे हैं। कान होते हुए भी बहरे हैं। अमृत उनके पास है, लेकिन पीना नहींचाहते। अन्यथा अगस्त्यकी तरह दुःखके समुद्रको पीनेकी क्षमता किसमें नहीं है? आँख मिली है अपने स्वरूपको देखनेके लिए। कानका उपयोग आत्माकी आवाज सुननेमें है, लेकिन इनका उपयोग हम सुखको देखने सुननेकी ओर करते हैं। लौकिक सुख, जो आनन्दकी प्रतिच्छाया है, केवल आश्वासन है। वहाँ दुःख और असफलताके सिवा कुछ नहीं मिलता। आनन्दकी दिशा है संसारसे स्वयंकी ओर। सुखकी दिशा है स्वयंसे संसारकी ओर अर्थात् हमारे स्वयंके आनन्दका आभासही जगत्‌में होता है, पर उसकी मृगतृष्णामें जब हम स्वयंसे दूर हटते चले जाते हैं, तब वह सुख भी उतना ही खोखला होकर अन्तमें निराशा प्रदान करता है। इसके विपरीत जब हम संसारसे स्वयंकी ओर बढ़ते हैं, वही सुख आनन्दमें बदल जाता है, तब हम स्वयंके सांनिध्यमें पहुँच जाते हैं।

अतः हमें यदि आनन्दकी अनुभूति प्राप्त करनी है तो अपनी ओर जाना होगा। स्वयंको जानना होगा अपनेको पहचानना होगा, जिसे आज हम भूल बैठे है।

●

हिन्दी कवियोंकी गङ्गा-भक्ति

जय गङ्गे आनन्द-तरङ्गे

पांडेय, डॉ० श्री नागेश्वर सिंह 'शशीन्द्र' विद्यालंकार डी० एल० सी०

★

'भारतीय जीवनमें गङ्गा और संस्कृति एक दूसरेके पर्याय बन गये हैं। गङ्गामें संस्कृतिके सारे गुण समाहित हैं, जीवनदायकत्व, शाश्वत प्रवहमानत्व, निर्मलता, समत्वभाव, सभीको अपनाने, आत्मसात करनेकी क्षमता, स्वयमेव शुद्धिकरणकी प्रक्रिया तथा सम्पर्कमें आनेवाले प्राणिमात्रका मंगल करना। गङ्गा भारतकी भौगोलिक सरिता ही नहीं, अपितु भारतीय सभ्यता और संस्कृतिकी प्राणवन्त गाथा है'—लोकनायक, राष्ट्रपुरुष मोरारजी भाई देसाई—

नारद पुराण, देवीभागवत और भागवत पुराणमें गङ्गाका जो सांस्कृतिक रूप वर्णित है, उसीका चित्रण वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, शङ्कराचार्य, पण्डितराज जगन्नाथ आदि संस्कृतके अमर कवियोंने अपनी अमर कृतियोंमें किया है। वहीं गङ्गायमुनाकी लहरोंपर लहराती खेलती हिन्दी भारतीने उसकी कलकल-धारामें उसीकी कृति-कहानी कही। लहरोंके मनोहारी सौन्दर्यको वाणी दी। विद्यापतिसे लेकर 'नेपाली' तक सबने गङ्गाकी यश-गाथा गायी : किसीने गङ्गा-भक्तिके गीत गाये, तो किसीने उससे करुणाकी याचना की। किसीने प्यासी आत्माकी तृप्तिके लिए वरदान मांगा, किसीने माता माना। वस्तुतः भारतीय इतिहासकी साक्षी गङ्गा हमारी राष्ट्रीय चेतनाको प्रतिक्षण प्रेरित करती है। तभी तो मैथिल-कोकिल विद्यापतिके 'गङ्गा—गीतों' में पौराणिक कथाका वर्णन ही नहीं, श्रद्धाकी दिव्य अनुभूतिकी मार्मिक अभिव्यक्ति भी है। कविकी यह अनुभूति गङ्गाकी पवित्रता तथा महत्ताको व्यंजित करती है। भक्तकवि गङ्गा-गीत गाकर पुलकित है :

कत सुखसार पाओल तुअ तीरे, छोड़इत निकट नयन बह नीरे।
कल जोरि विनमओ विमल तरङ्गे, पुन दरसन होए पुनमति गङ्गे॥

महाकवि तुलसीने 'मानस' की भूमिकामें ही सुर-सरिताकी वन्दना की हैं। 'विनय-पत्रिका'के अनेक पदोंमें महाकविने सुर-सरिताकी महती महिमाका वर्णन किया है 'कवितावली' में कविने गङ्गाको 'ब्रह्म-द्रवके रूपमें देखा है। वह अज्ञात, अज्ञेय, अनन्त और अदृश्य ब्रह्म प्राणिमात्रके कल्याणके लिए पृथ्वीपर आया है जिससे जीव मोक्ष पा सकता है :

ब्रह्म जो व्यापक वेद कहैं गम नाहिं गिरा बिन ज्ञान गुनीको
जो करता, भरता, हरता सुर-साहिब साहिब दीन-दुनीको।
सोई भयो द्रवरूप सही जू है नाथ बिरंचि महेस-मुनीको
मानि प्रतीति सदा तुलसी जल काहे न सेवत देव-धुनीको।

और यमुना-तटपर आयोजित राधाकृष्णकी रासलीलाका भाव-भीना वर्णन करनेवाले रसिक रसखान 'गङ्गा'को भी नहीं भूल सके। उन्होंने सुर-सरिताके सुयशका गानकर भोले भण्डारी शिवके साथ मनोरम विनोद किया। शिव और गङ्गांकी प्रतिस्पर्द्धा पुराणप्रसिद्ध है। यह तो व्यासकी कल्पना थी। रसखानकी कल्पनाने इस प्रतिस्पर्द्धाको समाप्त कर दिया :

वैद्की औषधि खाय नहीं न करै कछु संजम री सुन मोंसे
तेरोई पानी पियै 'रसखानि' संजीवन जानि लहै सुख तोसें
पेरी सुधामयी भागीरथी सब पथ्य कुपथ्य बनै तुव पोसें
आक धतूर चबात फिरैं विख खात फिरैं सिव तेरो भरोसें।

रीतिकालमें प्रसिद्ध कवि 'पद्माकर' तो अन्तमें दरबारोंकी आशा छोड़ गङ्गाकी शरणमें ही आ पहुँचे। लहरोंसे खेल खेलकर गङ्गाके प्रति गीत गाने लगे और 'वहीं गङ्गालहरी' की कल्पना साकार हो उठी। 'गङ्गालहरी' में कहीं कविने गङ्गाकी महिमाका वर्णन किया, तो कहीं उसके विभिन्न रूपोंकी उत्प्रेक्षाएँ कर एक चित्रशाला ही खड़ी कर दी :

पायो जिन तेरी धौरी धारामें धसत पात
तिनको न होत सुरपुर ते निपात है।

× × × ×

जहाँ जहाँ मैया तेरी धूरि उड़ि जात गंगा
तहाँ तहाँ पापनकी धूरि उड़ि जात है।

× × × ×

सरद घटा सी खासी उठती अटा सी
दुपटा सी छिति छीरधि छटा सी निरधारिये।

× × × ×

छहरैं छबीली नयी नयी न्यारी-न्यारी नित
लहरैं निहारि प्यारी गङ्गा जू तिहारिये।

बाबा रघुनाथदास 'रामसनेही' गङ्गाकी महिमा, पुण्यदायिनी शक्तिका उल्लेख करते नहीं थकते। संसारके समस्त पुण्य गङ्गा की समता नहीं कर सकते। सहस्र मुखवाले शेषनाग भी उसकी महिमाका वर्णन नहीं कर सकते। जीवन भर सुख, रोग-मुक्ति और शरीर त्याग देनेपर परमधामकी प्राप्ति, इस प्रकार लोक परलोक दोनोंको सफल करनेवाली माँ गङ्गाकी 'राम सनेही' ने स्तुतिकी है :

सकल पुण्य लै तुला चढ़ावै। गङ्ग महातम सम नहिं पावै॥
जिमि घन सोष्ण वोष्ण तम खोवै। तिमि गङ्गा कलि पातक धोवै॥
गङ्ग महातम अहै अपारा। थकैं कहत मुख शेष हजारा॥

कविवर गिरधरदासने अपने पदोंमें उसी लोक प्रसिद्ध अलौकिक विश्वासकी पुष्टि की :—

जमकी सब त्रास विनास करी मुख ते निज नाम उचारन में,
सब पाप प्रतापहिं दूर दर्‌यो तुम आपन आप निहारन में।
अहो गङ्ग अनङ्गके शत्रु करे बहु नेक जलै मुख डारनमें,
गिरिधारन जू कितने बिरचे गिरिधारन धारन धारनमें॥

भारतेन्दुकी गङ्गा तो और अनोखी थी। गङ्गाकी शोभा देखकर वे ठगेसे रह जाते थे। शोभा अवर्णनीय है। दृष्टि जिस ओर जाती है बस अटक जाती है। हीरे-मोतीकी माला जैसी तरंगोंको बस देखते ही बनता है :—

तव उज्वल जलधार हार हीरक सी सोहति,
बिच बिच छहरति बूँद मध्य मुक्तामनि पोहति।
लोल लहर लहि पवन, एक पै इक इमि-आवति,
जिमि नरगन मन विविध, मनोरथ करत मिटावत॥

'साकेत' के कवि मैथिली शरण गुप्तने भी गङ्गाको अपने ढंगसे पत्र पुष्प अर्पित किये। गङ्गा सारी सम्पदाओंकी खान है :—

जय गङ्गे आनन्द तरङ्गे कलरवे, अमल अंचले पुण्यजले हरिसम्भवे।
सरस रहे यह पुण्यभूमि तुमसे सदा, हम सबको तुम एक चलाचल सम्पदा॥

और कविवर पन्तने 'नौका बिहार' नामक कवितामें गंगाको एक नया मानवीय व्यक्तित्व प्रदान किया :—

सैकत-शय्या पर, दुग्ध धवल तन्वङ्गी गङ्गा, ग्रीष्म विरल।
लेटी है श्रान्त, क्लान्त, निश्चल तापस बाला गंगा निर्मल।
शशि मुखसे दीपित मृदु करतल लहरे उरपर कोमल कुन्तल॥

राष्ट्रीय धाराके प्राणवन्त कवि दिनकरने रेणुकामें 'पाटलिपुत्र' की गंगाको देखकर भारतके उस गौरवमय अतीतका गान गाया :—

तुझे याद है, चढ़े पदोंपर कितने जय-सुमनोंके हार ?
कितनी बार चन्द्रगुप्तने धोयी है तुझमें तलवार ?
विजयी चन्द्रगुप्तके पदपर सेल्यूकसकी वह मनुहार ?
तुझे याद है देवि ! मगधका वह विराट उज्ज्वल शृंगार ?

और सबके अन्तमें स्वाधीन कलमके सम्राट गोपालसिंह नेपालीने चीनी आक्रमणसे क्षुब्ध हो गंगाकी धाराको बचानेके लिए भारतीयोंसे ललकारते हुए कहा :—

हो जाय पराधीन नहीं गंगकी धारा,
गङ्गाके किनारोंको शिवालयने पुकारा।

●

जागो, हो चला सबेरा है

शीतल सुगन्ध गति मन्द पवन
बह रहा मनोहर सनन-सनन
भरकर तनमें हल्को सिहरन
घर-घर आ उसने घेरा है
जागो, हो चला सबेरा है॥
चिड़ियोंका कलरव सुन-सुनकर
मनमें बजते वीणाके स्वर
सारे तनमें फुर्ती भरकर
गीतोंने डाला डेरा है
जागो, हो चला सबेरा है॥
रंगोंमें रंगकर सजा गगन
करता है सबका मन चेतन
रंगकर धरणीके वन-उपवन
उसने क्या जादू फेरा है
जागो, हो चला सबेरा है॥
फूलोंकी कलियाँ सजधजकर
हैं खोल रहीं मुखड़े सुन्दर
सब लहराती हैं गन्ध लहर
कैसा यह रूप बिखेरा है
जागो, हो चला सबेरा है॥
चल पड़े बैल हल ले किसान
करनेको जगको अन्नदान
जग उन्हें पूजता धन्य मान
सारा जग उनका चेरा है
जागो, हो चला सबेरा है॥
जागो, जग तुम्हें जगाना है
आलस, भय दूर भगाना है
सबमें नवजोवन लाना है
यह दुनिया रैन बसेरा है
जागो, हो चला सबेरा है॥

●

वेष-संस्कृति—क्या थी और क्या होनी चाहिए ?

भारतीय नारीकी वेषभूषा

श्री पं० रघुनाथ शास्त्री,
भू० पू० वेदान्तविभागाध्यक्ष, वा सं० वि० वि० काशी ।

★

वेशका अर्थ है बनावटी रूप बनाना या सजावट करना । इस बनावट या सजावटके अन्तर्गत अनेक रंग और कटावके वस्त्र और आभूषण पहनना, नये-नये ढंगसे बाल सँवारना, आंजन और अंगराग लगाना; ओठ, हाथ, नख तथा पैर रंगना आदि अनेक बातें आती हैं । यों तो पुरुष और स्त्री दोनों ही अपनी-अपनी सजावट करते हैं, किन्तु स्त्रियाँ अपनी वेशभूषामें अधिक सजग और रुचिपूर्ण होती हैं । प्रत्येक देशकी स्त्रियाँ अपने-अपने देशकी परम्पराके अनुसार अपना वेश बनाती हैं । यहाँतक कि किसी-किसी देशके स्त्री और पुरुष तो अपने सारे शरीरपर गोदना गोदवा लेते हैं और यह क्रिया पाँच-छः वर्षमें पूरी होती है । हमारे देशमें शृङ्गारका अधिकार उन सौभाग्यवती स्त्रियोंको ही दिया गया है जिनका पति साथ हो । जिस स्त्रीका पति विदेश गया हो या जो विधवा हो उसके लिए मंडन और शृङ्गार निषिद्ध हैं ।

वस्त्र :—

सभी भारतीय शास्त्रोंमें विधान किया गया है कि स्त्रियोंको एक अधोवस्त्र और एक उत्तरीय धारण करना चाहिए । गोभिल गृह्यसूत्रके द्वितीय प्रपाठकको प्रथम कंडिकाके विवाह-प्रकरणमें कन्यासे कहा गया है 'हे आयुष्मती ! तुम यह वस्त्र धारण करो । देवियोंने इसका सूत्र काता है, इसे बुना है और इसमें चौमुखी गाँठें देकर इसे दृढ़ कर दिया है । हमारी मंगल-कामना है कि वे देवियाँ अपने दयालु हाथोंसे तुम्हें बुढ़ापे तक यह वस्त्र पहनाती रहें ।' वस्त्र पहननेके विधानमें लिखा है कि वही वस्त्र पहनना चाहिए जो अहत हो अर्थात् फटा न हो, जो देवताओं और पितरोंके कार्योंमें ग्राह्य हो, नया हो तथा ठीक-ठीक शरीरपर बैठ सके ।

मत्स्यपुराणमें लिखा है कि यदि सौभाग्यवती स्त्रीका पति साथ हो, तो उसे लाल वस्त्र पहनने चाहिए । विधवा स्त्रीको कभी रंगीन वस्त्रोंका प्रयोग नहीं करना चाहिए और कुमारीको तो केवल श्वेत वस्त्र ही पहनने चाहिए । 'शुक्लवाससी' पहननेका जो विधान किया गया है उसका अर्थ ही यह है कि कन्याओंको दो वस्त्र पहनने चाहिए—अधोवस्त्र और

उत्तरीय। पहननेका ढंग वताते हुए शंखने लिखा है कि कुलवधूको इसप्रकार वस्त्र धारण करना चाहिए कि उसका पल्ला पीछे और आगेके भागको इस प्रकार ढँक ले कि उदर, नाभि, स्तन और पीठ दिखलायी न दें। यह वस्त्र इसप्रकार वँधा हुआ होना चाहिए कि स्तनपर से हटने न पावे। काव्यमीमांसामें कहा है कि कुलवधूका अधोवस्त्र ऐसा होना चाहिए कि वह पैरोंकी गुल्फसंधि (घुट्टी) तक लटका रहे और शरीरके चारों ओर लिपटकर कमरसे पैरोंकी घुट्टीतक ढँके रक्खे। उसीमें लिखा है कि केरलकी स्त्रियाँ कमरमें साड़ीका घेरा देकर उसे नाभिके नीचे चुनकर उसकी नीवी (नाड़ा) वना लेती हैं। अतः, कुलीन स्त्रियोंको पैरोंतक लटका हुआ वस्त्र धारण करना चाहिए। घुटनेतकके वस्त्र पहननेका विधान केवल कुमारियोंके लिए है। पाणिनिने भी 'आप्रपदं प्राप्नोति' सूत्रके द्वारा पैरके अग्रभागतक फैले हुए वस्त्र या साड़ीकी ही वात कही है।

पाणिनिके 'अन्तरं वहिर्योगोपसंव्यानयोः' (१।१।३६) सूत्रकी व्याख्यामें कहा गया है कि एक समयमें स्त्रियाँ दो या तीन साड़ियाँ धारण करती थीं। भीतरकी साड़ी लगभग उसी प्रकारकी होती थी, जैसी आजकल स्त्रियाँ साड़ीके नीचे साया या घाघरा (पेटीकोट) पहनती हैं।

आर्य स्त्रियोंको नीले रंगमें रंगी हुई साड़ी पहननेका भी निषेध था और यह विधान था कि केवल पति-समागमके समय ही वे नीली साड़ीका प्रयोग करें। अङ्गिरा-स्मृतिमें भी कहा गया है कि नीला वस्त्र धारण करके जो व्यक्ति स्नान, दान, जप, होम, स्वाध्याय और पितृ-तर्पण आदि कार्य करता है उसे वड़ा पाप लगता है। यदि कोई व्यक्ति अज्ञान-वश नीला वस्त्र धारण कर भी ले तो उसे चाहिए कि दिन-रात उपवास करके पंचगव्य पीकर प्रायश्चित्त करें।

कुमार-सम्भवके पंचम अध्यायमें पार्वती और व्रह्मचारीके संवादमें कालिदासने कहलाया है कि 'अरे! कहाँ तो सुन्दर हंससे चित्रित आपका यह वस्त्र, और कहाँ रक्तसे सना हुआ शिवजीका गजचर्म।' इससे प्रतीत होता है कि स्त्रियोंकी साड़ियाँ चित्रित भी होती थीं।

वात्स्यायनके कामसूत्रके चौथे अधिकरणमें प्रथम अध्यायमें सौभाग्यवती स्त्रियोंके वेशका वर्णन करते हुए कहा गया है कि 'जिस स्त्रीके शरीरसे पसीना निकलकर दुर्गन्ध देता हो, दाँतपर मैल जमी हो तथा अन्य प्रकारकी दुर्गन्ध आती हो उसका पति उससे रूठा ही रहता है। इसके विपरीत, जो स्त्री अनेक प्रकारके आभूषण, रंग-विरंगी सुगन्धित पुष्पोंकी माला, सुगन्धित फुलेल, विभिन्न प्रकारके अंगराग तथा सुन्दर वस्त्र धारण करती है, उसका पति उसके वशमें रहता है।' वेशके निर्माणमें ऋतुका भी विचार किया जाता था। वसन्तमें वासन्ती साड़ी, वर्षामें लाल, घूमने-फिरनेके समय हल्के वस्त्र, कम आभूषण, भीनी गन्धवाले अंगराग तथा श्वेत वस्तुएँ अधिक आकर्षक होती हैं।

अभिज्ञान-शाकुन्तलमें शकुन्तलाने अपनी सखी अनसूया और प्रियम्वदासे स्तनोंपर कसे हुए वल्कलको ढीले करनेकी वात कही है जिससे ज्ञात होता है कि उन दिनों चोलीका भी प्रयोग

होता था। उसीके चतुर्थ अंकमें लिखा है कि शकुन्तलाकी बिदाईके समय किसी वृक्षने क्षौम वस्त्र (तीसीकी तन्तुओंका बना हुआ वस्त्र, रेशमी वस्त्र नहीं) दिया, किसीने पैरोंमें लगानेके लिए महावर दिया और बनदेवियोंने आभूषण दिये। हमारे यहाँ किसी-किसी अवसरपर घूँघट निकालनेका भी विधान था, विशेषत: विवाहके समय। अभिज्ञान-शाकुन्तलके पाँचवें अंकमें दुष्यन्तने शकुन्तलाको घूँघटके साथ ही देखा था।

केश :—

काव्य-मीमांसामें लिखा है कि आर्यकुलकी स्त्रियाँ बड़े लम्बे-लम्बे केश धारण करती थीं। उनके केश न काटे जाते थे न छांटे जाते थे। केरलकी स्त्रियाँ अपने केश बड़े कलात्मक ढंगसे गूँथकर रखती हैं, जूड़ेमें सुन्दर रत्न-जड़ी चूड़ामणि धारण करती हैं और अपने गुथे हुए केशसे आगे ललाट तक को घेरे रखती हैं। अजन्ता, अलोरा तथा अन्यत्रकी प्राचीन मूर्तियों और चित्रोंके निरीक्षणसे ज्ञात होता है कि केश-सँवारनेके जितने विलक्षण, अद्भुत और विविध कौशल भारतीय नारियोंको ज्ञात थे उतने संसारके किसी प्रदेशकी नारियोंको न ज्ञात थे, न हैं। हमारे यहाँ धर्मशास्त्रमें विधान है कि पतिके आयुष्यकी कामना करनेवाली स्त्रीको केश सँवारने और जूड़ा बाँधनेमें कभी आलस्य नहीं करना चाहिए।

आभूषण तथा शृङ्गार :—

ऋग्वेद-संहितां (मन्त्र १०।७८५।३१) में लिखा है कि जो सौभाग्यवती स्त्रियाँ अर्द्धचन्द्रके आकारका स्वार्णमय आभूषण सिरपर धारण करती हैं कि उनकी सब व्याधियोंको इन्द्र आदि देवता उसके शरीरसे हटाकर, जहाँसे आयी है, वहाँ वहुंचा देते हैं। ऋक्संहिता (अ० ७, मं० १०, सूक्त ८५) के अनुसार स्त्रियोंको अपने नेत्रोंमें आंजन भी लगाना चाहिए। काव्यमीमांसाके कविरहस्य शीर्षक अध्यायमें विभिन्न देशोंकी स्त्रियोंके वेशका विवरण देते हुए कहा गया है—गौड़ (बंगाल) की स्त्रियाँ अपने हृदय और स्तनोंपर केशर और कस्तूरीसे मिला हुआ चन्दनका लेप लगाती हैं, स्तनों तक लटका हुआ सूत्रहार पहनती हैं, अपने सुन्दर केश गूँथकर कमर तक लटका लेती हैं, बाहुका मूलभाग ऐसा खुला रहता है कि वह स्पष्ट दिखाई पड़ता रहे, रंग-विरंगे फूल और सुगन्धित पदार्थोंका सेवन करती हैं, कानोंमें लटकते हुए कर्णाभरणोंसे उनके कपोल सुशोभित होते रहते हैं और सुन्दर गढ़ी हुई सोने या चाँदीकी सिकड़ीं उनके हृदयपर हिलती हुई लटकती रहती है।

मार्कण्डेयपुराणके देवी-माहात्म्यमें लिखा है कि देवताओंने देवीको हार, चूड़ामणि, कुंडल, कटक अर्द्धचन्द्र, केयूर, नुपूर, ग्रैवेयक (सिकड़ी) अङ्गुलीयक, नागहार आदि आभूषण अर्पित किये। समुद्रने सदा खिला रहनेवाला कमल दिया और पृथिवीको धारण करनेवाले नागराजने उन्हें बहुमूल्य मणियोंवाला नागहार दिया। इससे यह ज्ञात हो जाता है कि भारतकी स्त्रियाँ कितने प्रकारके आभूषण प्रयोगमें लाती थीं।

काव्यमीमांसाके पाँचवें अध्यायमें लिखा है कि स्वच्छन्द विलासकी वेला आनेपर भी नायिकाने अपने कंठमें निष्क नहीं धारण किया, गलेमें मणियोंको नहीं पहना, कानोंमें कुण्डल

न पहनकर एक पतला-सा लीलापत्र लटका लिया और शरीरपर चित्र-विचित्र रंगीन कौशेय वस्त्रतक नहीं पहना। काव्यमीमांसाके ही छठे अध्यायमें लिखा है—'अरे नायक! मेरा आशीर्वाद है कि चित्र-विचित्र पत्रोंसे निर्मित ताटंककी रगड़से पीले गालोंवाली और रत्नजटित तगड़ीसे छम-छम करनेवाली सुन्दरियाँ सदैव तुमसे स्नेह करें।' काव्यमीमांसाके ही दसवें अध्यायमें लिखा है कि उस नायिकाने अपने पतिके सिरकी चन्द्रकलाको स्पर्श करनेके लिए अपने पैर रंगे और परिहास करती हुई मन्द मुसकानके साथ पुष्प-मालासे अपने पतिपर प्रहार किया।

पति ही पतिव्रताके लिए सर्वस्व है, अतः, अपने पतिका आयुष्य चाहनेवाली पतिव्रताके लिये, कभी केश-संस्कार, करने, कबरी (जूड़ा) बाँधने और हाथ-कानके आभूषणमें तिलक करनेका भी विधान है—काव्यमीमांसाके तेरहवें अध्यायमें एक सुन्दरीसे कहा जा रहा है—हे सुन्दरी! यह मनोहर वेश धारण करना क्या तुमने चन्द्रमासे सीखा है? क्योंकि तुम्हारे वक्षपर मोतियोंका हार है, कानमें चन्द्रमाके आकारके बड़े-बड़े दन्तपत्र हैं, कण्ठमें माला है, सिरपर ओढ़नी है, छातीपर कपूरका चूरा पुता है, माथपर चन्दनकी बिन्दी है, हाथोंमें सुन्दर छोटे-छोटे कमल हैं, शरीरपर नीले वस्त्र हैं, अंग-अंगमें कस्तूरी लगी है, बाँहोंमें मधुर चन्द्रिका और रत्नजटित कङ्कण हैं, और शरीरपर मालतीकी लताओंसे बनाये हुए सर्पकी आकृतिके आभूषण हैं।

महाभारतके विराट्पर्वमें स्त्रीका वेश बताते हुए कहा गया है—'श्याम वर्णवाला, हाथियोंके नायकके समान विशालकाय, देवताओंके समान सुन्दर और महासत्त्व अर्जुन अपने हाथमें शंखकी चूड़ियाँ और सोनेके कुण्डल पहने हुए था।' मृच्छकटिकके प्रथम अङ्कमें भी स्त्री-वेशके वर्णनमें पवनके झोंकेसे इधर-उधर उड़नेवाले लाल वस्त्र, कुण्डलोंके हिलनेसे घिसे हुए कपोल, कमरपर तारोंके समान चित्र-विचित्र कान्तिवाली तगड़ी, सुगन्धित पुष्पमालासे उद्भूत गन्ध और बजनेवाले नूपुरकी चर्चा आयी है। उत्तरमेघमें नारीके वेशके सम्बन्धमें लिखा है—'अलकामें तुम्हें फूलोंसे सजी हुई, अपने हाथोंमें कमल और कोमल कुन्दके फूलोंसे गूँथी हुई चोटी पकड़े अनेक ऐसी नवेलियाँ मिलेंगी जिनके मुखकी चमक लोधकी धूलने पीली कर दी होगी और जो बालोंमें नये कुरबकके फूल खोसे हुए, कानोंमें सिरसके फूलके कुण्डल लटकाये हुए, जूड़ेमें कदम्बका फूल लगाये हुए घूमती मिलेंगी।' मृच्छकटिकके दूसरे अङ्कमें भी दिया हुआ है—'पैरोंमें नुपूर छम-छम कर रहे हैं, कमरमें मणियोंसे जड़ी तगड़ी सुशोभित है, हाथोंमें अत्यन्त सुन्दर रत्न-जड़े कड़े शोभा दे रहे हैं।' उसीमें आगे पाँचवें अंकमें 'कानकी लोरसे लटके हुए कदम्ब'की चर्चा आयी है। अभिज्ञान-शाकुन्तलके प्रथम अंकमें भी सुन्दरियोंके कानोंसे सिरसके फूलका वर्णन आया है।

मङ्गल-सूत्र :—

पहले काँचके छोटे-छोटे मणियोंसे सजे हुए मङ्गलसूत्र पहननेकी प्रथा भी थी, जिसका विवरण संस्कार-गणपति, विधान-पारिजात तथा लघ्वाश्वलायन-स्मृतिमें दिया गया है। इसी प्रकार नन्दिपुराणमें भी सौभाग्यवती स्त्रियोंके हाथ, कान, वक्षःस्थल, कमर आदिपर पहननेके अलंकारोंका वर्णन दिया गया है।

अङ्गराग और अनुलेप :—

कामसूत्रके सप्तम अधिकरण और प्रथम अध्यायके सुभगीय प्रकरणमें लिखा है कि तगर, कूट और तालोसके पत्तोंको पीसकर शरीरपर अनुलेपन करनेसे सौभाग्य और सौन्दर्य बढ़ता है। इसी प्रयोगमें आगे लिखा है कि इन तीनोंको महीन पीसकर उसमें कपड़ेकी बत्ती डुबोकर बहेड़ेसे सधे हुए तेलसे आंजन बनाकर उसे नेत्रमें लगानेसे सौभाग्य बढ़ता है। इसीके साथ-साथ पुनर्नवा (गदहपुन्ना), सहदेवी (सहदेइया), सारिवा, कुरण्टक (कोरैयाकी जड़) और कमलकी पंखड़ियाँ महीन पीसकर तिलके तेलमें पकाकर यदि शरीरपर मला जाय तो सौभाग्य और सौन्दर्य बढ़ता है। आयुर्वेद-शास्त्रमें लिखा है कि अपनी कोष्ठशुद्धि करके (वमन-विरेचन करके) श्वेत कमल, लाल कमल और नागकेसर सुखाकर, उनका चूर्ण लेकर, असमान (एक कम और दूसरा अधिक) मधु तथा घृतके साथ चाटे तो एक मासमें सुन्दरता आ जाय। इसी प्रकार पद्म, उत्पल और नागकेसरको तगर तालीस और तमालपत्रके साथ पीसकर उबटनके समान लगावे तो सौभाग्य बढ़ता है।

वात्स्यायनके कामसूत्रके प्रथम अधिकरणके चौथे अध्यायके नागरिक वृत्त प्रकरणमें लिखा है कि शयनागारमें रात्रिके उपचारके योग्य अनुलेपन, माला, सिक्थकरंडक (सिङ्गार-पेटी, तमालपत्रकी बनी हुई सुगन्धित द्रव्योंकी पिटारी), नीबूका चूर्ण तथा ताम्बूल आदि सामग्री रहनी चाहिए। काशी-खण्डमें भी हल्दी, केशर, सिन्दूर, काजल, रुईके कपड़े, ताम्बूल और आभूषण वस्त्रको माङ्गल्य अर्थात् शृङ्गारकी वस्तु माना है। वहीं अठारहवें अध्यायमें लिखा है—'नागकेसर तथा लोधके विन्दुलेपसे सुशोभित कञ्चुकी (चोली) कसे हुए, कुङ्कुमसे मुँह चीते हुए स्त्रियाँ तेल लगाकर जूड़े बना रही हैं। कपोलोंका सौन्दर्य बढ़ानेके लिए चन्दनविन्दु कुङ्कुमका लेप तथा अलक्तक आदि साधन बताये गये हैं। काव्य-मीमांसामें वसन्तका वर्णन करते हुए कहा है कि नायिकाएँ शरीरको शीतल रखनेवाले पदार्थोंका उपयोग करती हैं, अंगोंमें कपूरका चूरा मलती हैं, मौलसिरीके फूल बालोंमें गूँथती हैं, गीली और ठण्ढी सुवासित सुपारीके साथ पान खाती हैं, चाँदीके ठण्ढे हार और बारीक वस्त्र पहनती हैं, गर्मीमें ठण्ढे पदार्थोंका सेवन करती है, महीन पिसे हुए चन्दनमें लिपटे हुए मोतियोंके हार; जलसे सिक्त कमलकी मालाएँ और जूड़ेमें अधखिले चम्पाके फूल गूँथती हैं, कानोंमें खिला हुआ सिरसका फूल, सिरपर लाल लताएँ, गलेमें कमलकी मालायें, हाथोंमें श्वेत कमलके कड़े, स्तनोंपर महीन घिसे हुए चन्दनसे मिश्रित जलका लेप, आँखोंमें सुरमा, ओठोंमें मजीठ और शरीरपर गुलाबजलकी फुहारे सजाती हैं, सिरसके फूल सिरपर सजाकर गलेमें लाल रंगके मरुवेकी माला पहनती हैं।

इस प्रकार हमारे यहाँ विभिन्न शास्त्रों और काव्योंमें भारतीय नारीकी वेश-भूषा, अलंकार, शृंगार तथा अंगरागका विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है, जिनका प्रयोग केवल सजा-वटके लिए ही नहीं, वरन् सौभाग्य-वर्धन और स्वास्थ्यवर्धनके लिए भी होता था।

●

उमा (पार्वती) का जन्म

★

भारतके उत्तरमें देवताके समान पूजनीय हिमालय नामका बड़ा भारी पहाड़ है। वह पूर्व और पश्चिमके समुद्रों तक फैला हुआ ऐसा लगता है मानो वह पृथ्वीको नापने-तौलनेका मापदण्ड हो। जब (राजा वेनके पुत्र) पृथु इस धरतीको दूहने चले तब उनके कहनेसे सब पर्वतोंने मिलकर इसी हिमालयको बछड़ा बनाया और दूहनेके काममें चतुर मेरु पर्वतको ग्वाला बनाकर उन्होंने पृथ्वी-रूपी गौ से सब चमकीले रत्न और जड़ी-बूटियाँ दूह निकाली। इस अनगिनत रत्न उत्पन्न करनेवाले हिमालयकी शोभामें बहुत हिम होनेके कारणभी कोई कमी नहीं हुई। क्योंकि जहाँ बहुतसे गुण इकट्ठे हों वहाँ यदि एक-आध खोट भी आ जाय तो वह वैसे ही छिप जाती है जैसे चन्द्रमाकी किरणोंमें उसका कलंक छिप जाता है। हिमालयकी कुछ चोटियोंपर गेरू आदि धातुओंकी अनेक रंग-बिरंगी चट्टानोंपर छाये हुए छोटे-छोटे बादल उनके रंगकी छाया ले-लेकर रंग-बिरंगे दिखाई पड़ने लगते हैं। उन्हें देखकर संध्या होनेके पहले ही यहाँकी अप्सराओंको संध्याका भ्रम हो जाता है और इस हड़बड़ीमें वे सायंकालके नाच-गानके लिए अपना शृंगार करना प्रारम्भ कर देती हैं। इसकी कुछ चोटिया इतनी ऊँची हैं कि मेघ भी उनकी ऊँचाईके आधे तक ही पहुँचकर रह जाते हैं, जिससे उनके ऊपरका आधा भाग मेघोंके ऊपर उठा रहता है, इसलिए निचले भागमें छायाका आनन्द लेनेवाले सिद्ध लोग जब अधिक वर्षा होनेसे घबरा उठते हैं, तब वे बादलोंके ऊपर उठी हुई उन चोटियोंपर जाकर रहने लगते हैं जहाँ उस समय धूप बनी रहती है। वहाँके सिंह जब हाथियोंको मारकर चले जाते हैं तब रक्तसे लाल उनके पंजोंकी पड़ी हुई छाप हिमकी धारासे घुल जाती है, फिर भी उन सिंहोंके नखोंसे छूटकर गिरी हुई गजमुक्ताओंको देखकर ही यहाँके किरात जान जाते हैं कि सिंह किधरसे होकर गये हैं।

इस पर्वतपर उत्पन्न होनेवाले जिन भोजपत्रोंपर लिखे हुए अक्षर हाथीकी सूँड़पर बनी हुई लाल बुँदकियों जैसे दिखायी पड़ते हैं, उन्हें विद्याधरियाँ अपने प्रेमपत्र लिखनेके काममें लाया करती हैं। पहाड़पर उगनेवाले बासोंके छेदोंमें वायु भर जानेपर जब वे बजने लगते हैं तब ऐसा जान पड़ता है मानो ऊँचे स्वरसे गानेवाले किन्नरोंके गीतोंके साथ वे संगत-कर रहे हों। जब यहाँके हाथी अपनी कनपटी खुजलानेके लिए देवदारुके पेड़ोंसे माथा रगड़ने लगते हैं तब उनसे ऐसा सुगंधित दूध बहने लगता है कि उसकी महकसे इस पर्वतकी सभी चोटियाँ एक साथ गमक उठती हैं। वहाँकी किन्नरियाँ जब जमे हुए हिमके मार्गोंपर चलती हैं

तब उनकी उँगलियाँ और एड़ियाँ ठंढके मारे ऐंठ जाती हैं, पर वे क्या करें? अपने भारी अंगोंके बोझके मारे वे बेचारी शीघ्रतासे चल नहीं पातीं और चाहते हुए भी अपनी स्वाभाविक मन्द गति नहीं छोड़ पातीं। दिनमें भी हिमालयकी लम्बी गुफाओंमें छाया रहनेवाला अँधेरा ऐसा लगता है मानो अँधेरा भी दिनसे डरनेवाले उल्लूके समान इसकी गहरी गुफाओंमें जाकर दिनमें छिप जाता है और हियालय उसे अपनी गोदमें शरण दे देता है, क्योंकि जो महान् होते हैं वे अपने शरणमें आये हुए नीच लोगोंसे भी वैसा ही अपनापन बनाये रहते हैं जैसा सज्जनोंके साथ। जिन हरणियोंकी पूँछोंके चँवर बनते हैं वे चमरी हरिणियाँ जब यहाँ चन्द्रमाकी किरणोंके समान अपनी उजली पूँछ इधर-उधर घुमाती हुई चलती हैं तब ऐसा प्रतीत होता है मानो इस पर्वतराजपर चँवर ढुलाकर इसका 'गिरिराज' नाम सच्चा कर रही हों। गंगाजीके झरनोंकी फुहारोंसे लदा हुआ, बार-बार देवदारुके वृक्षोंको कँपानेवाला और किरातोंकी कमरमें वँधे हुए मोरपंखोंको फरफरानेवाला यहाँका शीतल-मन्दसुगन्ध पवन उन किरातोंकी थकान मिटाता चलता है जो मृगोंकी खोजमें हिमालयपर इधर-उधर घूमते रहते हैं। स्वयं सप्तर्षिगण अपने सप्तर्षिमंडलसे आकर पूजाके लिए इसकी ऊँची चोटियोंपरके तालोंमें खिलनेवाले कुछ कमल तोड़कर ले जाया करते हैं और बचे-खुचे कमलोंको नीचे उदय होनेवाला सूर्य अपनी किरणें उठा-उठाकर खिलाया करता है। यज्ञमें काम आनेवाली सामग्रियाँ उत्पन्न करनेके कारण और पृथ्वीको सँभाले रखनेकी शक्ति होनेके कारण हिमालयको स्वयं ब्रह्माजीने उन पर्वतोंका स्वामी बना दिया जिन्हें यज्ञमें भाग पानेका अधिकार मिला हुआ है।

सुमेरुके मित्र और मर्यादा जाननेवाले हिमालयने अपना वंश चलानेके लिये मेना नामकी उस कन्यासे शास्त्रके अनुसार विवाह किया जो पितरोंके मनसे उत्पन्न हुई थी, जिसका मुनि लोग भी आदर करते हैं और जो हिमालयके समान ही ऊँचे कुल और शील-वाली थी। विवाह हो जानेपर कुछ ही दिनोंमें हिमालयकी उस सुन्दरी और युवती पत्नी मेनाके गर्भसे मैनाक नामका वह प्रतापी पुत्र उत्पन्न हुआ जिसने नागकन्याके साथ विवाह समुद्रके साथ मित्रता की और जिसने पर्वतोंके पंख काटनेवाले इन्द्रके रुष्ट होनेपर भी उनके वज्रकी चोट अपने शरीरपर नहीं लगने दी।

मैनाकके जन्मके कुछ ही दिनों बाद ऐसा हुआ कि महादेवजीकी पहली पत्नी और दक्षकी कन्या परमसाध्वी सतीने अपने पितासे अपमानित होनेके कारण योगबलसे अपना शरीर छोड़ दिया और दूसरा जन्म लेनेके लिए मेनाकी कोखमें आ बसीं और जैसे ठीक-ठीक काममें लाई जानेसे सुन्दर नीति उत्पन्न होती है, उत्साहका सहारा पाकर बड़ी सम्पत्ति उत्पन्न होती है, वैसे ही हिमालयने पतिव्रता मेनासे उस कल्याणीको जन्म दिया। उनके जन्मके दिन आकाश खुला हुआ था। पवनमें धूलका नाम भी नहीं था। आकाशसे शंख बजनेके साथ-साथ फूल बरस रहे थे और चर-अचर सभी उनके जन्मसे प्रसन्न हो उठे थे। जैसे नये मेघके गरजनेपर विदूर पर्वतके (वैदूर्य) रत्नोंमें अंकुर फूट उठते हैं और उनके प्रकाशसे विदूर

पूर्वजन्मके पाप क्या रोग बनकर सताते हैं?

श्री शिवगोपाल मेहरोत्रा

सम्पादक 'मानस-सन्देश'

★

'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।'

अर्थात्–किये गये सभी कर्मोंका फल जीवात्माको अनिवार्य रूपसे भोगना पड़ता है। किस पाप और बुराईके द्वारा कौन-सी योनि और व्याधि भोगनी पड़ती है। इसके विवेचन भी बड़े रहस्यपूर्ण है। यद्यपि अभी ऐसा कोई वैज्ञानिक यंत्र नहीं बना जो जीवात्माकी अन्तिम स्थितिका सही मूल्यांकन कर सके पर मानसिक भावोंके द्वारा भावी जीवनका अनुमान लगाया जाने लगा है।

कर्मोंकी गति यद्यपि विचित्र है, मानवीय दृष्टिसे यह पता लगाना कठिन हो जाता है कि किस पापका परिपाक कहाँ जाकर होगा, उसका फल कब मिलेगा?' चोरी करने वालेको तत्काल कोई दण्ड नहीं मिल सका, व्यभिचार करनेवाला उस समय पकड़में नहीं आया पर

पर्वतकी भूमि चमक उठती है वैसे ही तेजोमण्डलसे भरे मुखवाली उस कन्याको गोदमें पाकर मेना भी खिल उठीं।

धीरे-धीरे पार्वतीजी चन्द्रकलाके समान दिन-दिन बढ़ने लगीं,, और जैसे चांदनीके बढ़नेके साथ-साथ चन्द्रमाकी और सभी कलाएँ भी बढ़ने लगती हैं वैसे ही ज्यों-ज्यों पार्वतीजी बढ़ने लगीं त्यों-त्यों उनके सुन्दर अंग भी सुडौल होकर बढ़ने लगे। पर्वतसे उत्पन्न होनेके कारण पिताने और कुटुम्बियोंने सबकी दुलारी उस कन्याको पार्वती कहकर पुकारना आरम्भ कर दिया। पीछे जबसे पार्वतीको उनकी माताने उमा (उ=हे वत्से मा-तप मत करो।) कहकर तपस्या करनेसे रोका था तबसे उनका नाम 'उमा' पड़ गया था। जैसे भौंरोंकी पाँतें बसन्तके ढेरों फूल छोड़कर आमकी मंजरियोंपर ही झूमती रहती हैं वैसे ही अनेक सन्तानोंके होते हुए भी हिमवान्‌की आखें पार्वतीपर ही अटकी रहती थीं। जैसे अत्यन्त प्रकाशमान लौको पाकर दीपक, मन्दाकिनीको पाकर स्वर्गका मार्ग और व्याकरणसे शुद्ध वाणी पाकर विद्वान् लोग पवित्र और सुन्दर लगने लगते हैं वैसे ही पार्वतीजीको पाकर हिमवान् भी पवित्र और सुन्दर हो गये। (कालिदासके कुमारसम्भवसे—)

●

इन कर्मोंका फल कालान्तरमें प्रकृतिजन्य रूपमें उसी प्रकार मिलता है, जिस तरह मक्काका फल दो महीने, जौ-गेहूँका सात महीनेमें और अरहरके बीजका फल दस महीनेमें उपलब्ध होता है।

पूर्वजन्ममें किये हुए पाप व्यक्तिको रोग बनकर सताते हैं इसका उल्लेख आयुर्वेदमें आता है कि—'पूर्वजन्मकृतं पापं व्याधिरूपेण पीड़येत्।' आजके भौतिक वादीयुगमें ये बातें कुछ असम्भव लगती हैं। पर अब मनोविज्ञानका एक पक्ष ऐसा भी उभर रहा है जिसने अनेक तथ्योंकी खोजके आधारपर यह मानना प्रारम्भ कर दिया है कि इस जन्मके रोग-शोक पूर्वजन्मोंके या इस जीवनके हो दुष्कर्मोंके फल होते हैं। ब्रिटेनके मनोविज्ञानी विद्वान भी अब इसी धारणाकी ओर अभिमुख हो रहे हैं।

गरुड़ पुराणमें एक ऐसी ही आख्यायिका आती है, जिसमें बताया गया है कि यमलोक पहुँचनेपर चित्रगुप्त नामके यम-प्रतिनिधि सामने आते हैं और उस व्यक्तिके तमाम जीवनमें किये हुए कर्मोंका, जिन्हें वह गुप्त रीतिसे भी करता रहा है, चित्रपटकी भाँति दृश्य दिखलाते हैं। यमराज उन कर्मोंको देखकर ही उन्हें स्वर्ग और नरकका अधिकार प्रदान करते हैं।

वंशानुक्रमणकी बात जो लोग जानते है उन्हें पता है कि वीर्यका एक सेल किस प्रकार अपने पिताके सभी गुण यहाँ तक कि उसकी बौद्धिक क्षमतायें भी अपनेमें धारण किये रहता है। सूक्ष्मसे सूक्ष्म बीमारियों तकका प्रभाव इन सेल्सपर होता है। अर्थात् सेल्सका नाभिक-भाग अपनेमें अवचेतन मनके सारे भाव या अच्छे बुरे विचार, जो अब तक नस-रेसोंके रूपमें विकसित हुए थे, अपने साथ धारण करके ले जाता है। यह सूक्ष्म संस्कार मृत्युके समय जीवात्माके साथ ही उसी प्रकार जाते और बने रहते हैं जिस प्रकार वीर्यमें सेलके साथ। गीतामें कर्मफलके विषयमें भगवान् श्रीकृष्णने स्पष्ट कहा है—

'अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम्।'

(गीता १८-१२)

अर्थात्–'सकामी पुरुषोंको कर्मके अच्छे बुरे और मिले हुए ऐसे तीन प्रकारके फल मरनेके पश्चात् भी भोगने पड़ते हैं।

शरीरकी छोटीसे छोटी खुजलीसे लेकर दमा, खाँसी, स्वांस, क्षय, पक्षाघात, कुष्ठ आदिके कारण शरीरके विजातीय द्रव्य भले ही कहे जाँय पर उन विजातीय द्रव्योंका कारण मन और मनको पूर्वजन्मोके कर्मोंका फल ही कहना अधिक तर्कसंगत है। कोई भी व्याधि एवं पीड़ा कर्मफलके अतिरिक्त नहीं हो सकती। भगवान अपनी इच्छासे किसीको दण्ड नहीं देते। कर्मफल ही दण्ड देते हैं। भगवान तो बार-बार मनुष्य जीवनके रूपमें जीवको वह अवसर प्रदान करते रहते हैं जिससे वह विगत पापोंका प्रायश्चितकर अपने शुद्ध बुद्ध और निरंजन स्वरूपको प्राप्त करले।

•

श्रीमद्भागवतकी दिव्य कथा—

श्रीकृष्णभक्त नारदका पूर्व चरित्र

श्रीकृष्ण किङ्कर

★

सरस्वतीका पावन तट। शम्यात्रास नामक पुण्यतीर्थ। सूर्योदयकी सुरम्य बेला। एकान्त प्रदेशमें त्रिकालदर्शी महर्षि व्यास विराजमान हैं और परमात्मचिन्तनके पश्चात् इस विचारमें मग्न हैं कि 'जगत्का हित कैसे हो? भौतिक पदार्थोंकी शक्तिका निरन्तर ह्रास क्यों होता है? लोग दिनों-दिन दुर्भाग्यसे पीड़ित क्यों होते जा रहे हैं? वैदिक चातुर्होत्र कर्मकी शुद्धिका विचार करके मैंने एक ही वेदको चार भागोंमें विभक्त किया। स्त्रियों शूद्रों तथा कर्मभ्रष्ट द्विजोंको वेदत्रयीका लाभ कैसे मिले—इसके लिए ऐतिहासिक आख्यानसे युक्त महाभारतका निर्माण किया। सदा प्राणियोंके हितके ही कार्यमें मेरी प्रवृत्ति रही है; तथापि मेरी अन्तरात्मा सन्तुष्ट नहीं जान पड़ती क्या कारण है?' व्यासजी इसी उधेड़बुनमें पड़े थे कि वीणा बजाते हरिगुण गाते देवर्षि नारदजीने वहाँ पदार्पण किया। स्वागत-सत्कार ग्रहण करनेके पश्चात् देवर्षिने पूछा—

'आप कुछ असन्तुष्ट-से प्रतीत होते हैं। क्या कारण है'?

'मुने! आपका अनुमान ठीक है। आप सर्वज्ञ एवं सर्वदर्शी हैं, मुझे मेरे मानसिक असन्तोषका हेतु स्वयं ही बताइये।' व्यासजीसे इस प्रकार प्रेरित हो नारदजी बोले—

'आपने प्रायः भगवान्के निर्मल यशका वर्णन नहीं किया है। जिससे भगवान् श्रीहरि ही सन्तुष्ट न हो वह सारा दर्शन अधूरा है। आपने धर्मादि पुरुषार्थ-चतुष्टयका तो बारम्बार वर्णन किया है; परन्तु उसी तरह वासुदेवकी महिमाका प्रतिपादन नहीं किया है। जो वाणी श्रीहरिके पवित्र यशका गान न करे उसे काकतीर्थके समान अपवित्र समझा जाता है; उसमें मानस-वासी हंस नहीं रमते हैं। वाणीका वह प्रयोग ही जनताके पाप-तापका शमन करनेवाला है; जिसमें भगवान् अनन्तके नामों और गुणोंका वर्णन हो ऐसी रचना छन्दकी दृष्टिसे शिथिल होनेपर भी साधुजनोंको प्रिय होती है। भगवान् अच्युतके प्रति भक्तिभावसे शून्य ज्ञानकी भी शोभा नहीं होती; फिर कर्मकी तो बात ही क्या है? भले ही वह निष्काम हो। मनुष्यके तप, शास्त्रज्ञान, यज्ञ, सूक्ति, बुद्धि और दानकर्मकी सफलता इसीसे है कि उसके द्वारा उत्तमश्लोक

भगवान्‌के गुणोंका वारम्बार वर्णन हुआ हो। भगवान्‌के गुण-श्रवणकी कितनी महिमा है? यह बतानेके लिए मैं अपने पूर्वजन्मका वृत्तान्त सुना रहा हूँ।

"पहले जन्ममें मैं एक वर्तन मांजनेवाली दासीका पुत्र था। मेरी माताने मुझे कुछ महात्माओंकी सेवामें लगा दिया था। वे महात्मा परिव्राजक थे, परन्तु वर्षाके दिनोंमें चार महीनेके लिए एक निश्चित स्थानपर ठहरे हुए थे। उनके पास रहनेसे मेरी बालोचित चपलता दूर हो गयी थी। मैं मन और इन्द्रियोंको वशमें रखकर उन सबकी सेवामें लगा रहता था। खिलौनोंसे खेलनेकी मेरी आदत छूट गयी थी। मैं बहुत कम बोलता था। यद्यपि वे सब महात्मा समदर्शी थे तथापि मुझ सेवापरायण बालकपर उनकी विशेष कृपा हो गयी थी। मैं उनकी आज्ञासे प्रतिदिन एक बार उनकी जूठन या प्रसाद ले लिया करता था। इससे मेरे सारे पाप दूर हो गये थे। मेरा अन्तःकरण भी शुद्ध हो गया था। अतः उन्हीं भगवद्भजनात्मक धर्ममें मेरी भी विशेष रुचि हो गयी थी। वहाँ नित्य प्रति उनके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णकी मनोहर कथाका गान होता था और वह उन महात्माओंके अनुग्रहसे मुझे सुननेको मिलती थी। उस कथा-श्रवणमें मेरी रुचि बढ़ गयी और भगवान् पुण्यश्लोकमें मेरा मन अविचल भावसे लग गया। इसका फल यह हुआ कि यह सारा सदसत्प्रपञ्च मुझे अपने स्वरूपभूत परब्रह्ममें कल्पित प्रतीत होने लगा। यह कोई माया या छलना नहीं थी। यह मेरा यथार्थ अनुभव था।

'इस प्रकार वर्षा और शरद दो ऋतुओं तक प्रतिदिन सवेरे, दोपहर और सन्ध्याके समय उन महात्मा मुनियों द्वारा भगवान्‌के निर्मल यशका संकीर्तन होता और मैं वह सब ध्यान देकर सुनता था। इससे मेरे मनमें भगवान्‌की उस दिव्य भक्तिका उदय हुआ जो रजोगुण और तमोगुणको दूर भगानेवाली है। जब वे दीनवत्सल महात्मा वहाँसे अन्यत्र जानेको उद्यत हुए तब उन्होंने कृपापूर्वक मुझ विनीत सेवक एवं अनुरक्त बालकके प्रति उस गुह्यतम ज्ञानका उपदेश दिया जो साक्षात् भगवान् द्वारा श्रीमुखसे प्रतिपादित है। उसी ज्ञानसे मैंने परमात्मा वासुदेवकी मायाका प्रभाव जाना, जिससे ज्ञानी भक्त-जन उनके परम पदको प्राप्त होते हैं।

'जब वे भिक्षु महात्मा वहाँसे चले गये तब उस बाल्यावस्थामें जो वृत्तान्त घटित हुआ उसे बताता हूँ। मैं अपनी माताका इकलौता पुत्र था। मेरी माता एक मूढ स्त्री थी और दासीका काम करती थी। मेरे लिए संसारमें माताके सिवा दूसरा कोई सहायक या संरक्षक नहीं था, अतः वह मुझपर बहुत अधिक स्नेह रखती थी। वह परतन्त्र होकर भी मेरे योग-क्षेमकी चिन्ता करती थी। सारा जगत् भगवान्‌के वशमें उसी प्रकार नाच रहा है, जैसे सूत्रधारके अधीन कठपुतली। मेरी माँ एक ब्राह्मणके घरमें दासी थी; मैं भी उसकी देख-माल करता हुआ कुछ कालतक उन ब्राह्मण देवताके ही घरमें निवास करता रहा। मुझे दिशा, देश और कालका कोई ज्ञान नहीं था। अभी मेरी अवस्था पाँच वर्षकी ही थी। एक दिनकी बात है, मेरी माता गाय दुहनेके लिए गोष्ठमें गयी। रास्तेमें एक सर्पके ऊपर उसका पैर पड़ गया। उस कालप्रेरित सर्पने उस दिन मेरी माताको काट लिया। वह बेचारी चल बसी।

उस समय भक्तोंका कल्याण चाहनेवाले भगवान्‌का मैंने अपने ऊपर अनुग्रह माना और उत्तर दिशाकी ओर चल दिया। मार्गमें अनेकानेक समृद्धिशाली जनपदोंको लाँघता, नगर, ग्राम, गोष्ठ और प्रदेशोंको पीछे छोड़ता हुआ मैं आगे बढ़ता गया। कितने ही खेट, ख़र्वट, वाटी, वन, उपवन, विविध विचित्र धातुओंसे विचित्र शोभा धारण करनेवाले पर्वत, हाथियों द्वारा जिनकी शाखाएँ तोड़ दी गयी थीं, वे वृक्ष शीतल जलसे भरे जलाशय तथा देवताओं द्वारा सेवित पुष्करिणियाँ दृष्टिगोचर हुईं, जहाँ तरह-तरहके चहकते हुए पक्षी और गुंजारव करते हुए भ्रमर शोभा दे रहे थे।

'मैं अकेला ही आगे बढ़ता जा रहा था, मार्गमें एक बड़ा भयंकर जङ्गल आया। जहाँ हिंसक जन्तु उल्लू और गीदड़ियोंकी आवाज गूँज रही थी। रास्ता चलनेके श्रमसे मेरा शरीर चूर-चूर हो रहा था। मेरी इन्द्रियाँ शिथिल पड़ गयीं थीं। प्यास सता रही थी, भूखसे बुरा हाल था। मार्गमें जो जलाशय और नदियाँ मिलती थीं, उन्हींमें स्नान करके मैं जल पीता और अपनी थकावट दूर करता था। उस निर्जन वनमें एक पीपलका पेड़ था, मैं उसकी जड़में जा बैठा और मन-ही-मन जैसा महात्माओंसे सुन रक्खा था उसके अनुसार परमात्माके स्वरूपका चिन्तन करने लगा। मेरा चित्त भावावेशसे विवश हो रहा था। मैं श्रीहरिके चरणारविन्दोंका ध्यान करता और उत्कण्ठाधिक्यके कारण मेरे नेत्रोंसे अविरल अश्रुधारा बहती थी। उस अवस्थामें श्रीहरि मेरे हृदयमें प्रकट हो गये। तब प्रेमातिरेकसे मेरे शरीरमें रोमाञ्च हो आया और मुझे इतनी प्रसन्नता हुई मानों मैं आनन्दसिन्धुमें गोता लगा रहा हूँ। उस समय मैं इह लोक और परलोक सब कुछ भूल गया। इसी बीचमें भगवान्‌का वह मनोरम रूप सहसा मेरी दृष्टिसे ओझल हो गया। उसे न देखकर मुझे बड़ी घबराहट हुई और मैं खिन्न होकर ध्यानसे उठ बैठा। फिर मनको हृदयमें स्थापित करके मैं पुनः ध्यान द्वारा उस रूपके दर्शनकी चेष्टा करने लगा। परन्तु वह नहीं दीखा, नहीं दीखा। मैं अतृप्तकी भाँति आतुर हो उठा।

'इस प्रकार निर्जन वनमें मुझे यत्नशील देख गम्भीर स्वरमें आकाशवाणी प्रकट हुई, जो मेरे शोकको शान्त करनेवाली थी। मुझे स्पष्ट सुनायी दिया—'हन्त! अब तुम इस जन्ममें मुझे नही देख सकोगे। जिनके दोष पक नहीं गये हैं, उन कुयोगियोंके लिए मेरा दर्शन दुर्लभ है। एक बार अपना रूप तुम्हें इस लिए दिखा दिया है कि तुम्हारी रुचि इसमें बढ़ जाय। जिसकी मेरे रूपके प्रति कामना होती है, वह धीरे-धीरे दूसरी समस्त कामनाओंको त्याग देता है। सन्तोंकी दीर्घकालीन सेवासे तुम्हारी बुद्धि मुझमें दृढ़तापूर्वक लग गयी है; अब तुम इस निन्द्य योनिका परित्याग करके मेरे स्वकीय जनोंके लोकमें पहुँच जाओगे। तुम्हारी बुद्धि अब मुझसे कदापि दूर नहीं होगी। मेरी कृपासे तुम्हारी पूर्वजन्मविषयक स्मृति प्रलयकालमें भी नष्ट नहीं होगी।'

'यों कहकर आकाशवाणी शान्त हो गयी। मैंने उन आकाशस्वरूप परमेश्वरको मस्तक नवाकर प्रणाम किया। भगवान्‌की कृपा तो मुझपर हो ही गयी थी। अब मैं लाज छोड़कर भगवान्‌के गुह्य नामोंका स्मरण कीर्तन करने लगा। मेरी सारी कामनाएँ मिट गयी थीं।

मैं नित्य सन्तुष्ट रहकर मद और मात्सर्यसे शून्य हो कालकी प्रतीक्षा करने लगा। श्रीकृष्णमें मेरी मति लगी रहती थी। मेरा अन्तःकरण आसक्तिशून्य एवं निर्मल हो गया था। जैसे समय आनेपर बिजली चमक जाती है, उसी प्रकार मेरा अन्तकाल भी आ पहुँचा। मेरा प्रारब्ध कर्म नष्ट हो गया। मैं शुद्ध भागवत स्वरूपके चिन्तनमें रत था, इसी समय मेरा पाञ्चभौतिक शरीर धराशायी हो गया। कल्पका अन्त होनेपर जब भगवान् एकार्णवके जलमें शयन करना चाहते थे, मैं उनके प्राणमें प्रविष्ट हो गया। सहस्र युगोंतक शयन करनेके पश्चात् जब भगवान्ने सृष्टिविषयक संकल्प किया तब मरीचि आदि मुनि तथा मैं—भगवान्के प्राणसे प्रकट हुए। मैं अखण्ड ब्रह्मचर्यके साथ तीनों लोकोंमें बाहर और भीतर भी विचरता हूँ। भगवान् महाविष्णुकी कृपासे कहीं भी मेरी गति अवरुद्ध नहीं होती है। भगवान्की दी हुई स्वरब्रह्म-विभूषित इस महती वीणाको बजाकर हरि गुण गाता हुआ मैं विचरता रहता हूँ। जब मैं भगवान्के यशका गान करता हूँ उस समय वे आहूत हुए की भाँति मेरे हृदयमें शीघ्र प्रकट हो जाते हैं। मैंने संसार-सागरसे पार होनेके लिए एकमात्र जहाज देखा है भगवान्के लीलाचरित्रोंका वर्णन। श्रीकृष्णचरणोंकी सेवासे जिस प्रकार मन वशमें होता है उस प्रकार यम आदि योग-साधनोंसे भी नहीं होता है।'

इतना कहकर नारदजी चले गये।

●

सर्वत्र भगवद्दर्शन

प्रत्येक शरीर भगवान्का मन्दिर है। मन्दिरको दूरसे ही देखकर मस्तक श्रद्धासे झुक जाता है। यदि समस्त प्राणियोंके शरीरमें बैठे हुए भगवान्की ओर हमारी दृष्टि जाय तो हम उन सबको प्रणाम किये बिना नहीं रह सकते। फिर किसी भी जीवके प्रति ईर्ष्या, द्वेष या विरोधका भाव कैसे टिक सकता है? हमें सर्वत्र भगवद्दर्शन करना चाहिये। यह एक निर्भ्रान्त सत्य है; इसका साक्षात्कार आवश्यक है।

●

पौराणिक आख्यायिका

पुण्यदान

'विरज'

राजर्षि जनकने जब योगबलसे शरीर त्याग दिया तो किंकिणीजालभूषित एक अद्वितीय विमान उन्हें स्वर्गधाम ले जानेके लिए उपस्थित हुआ। दिव्यदेह-धारी महाराजने अपने सेवकोंके साथ उस विमानमें बैठकर दिव्यलोकको प्रस्थान किया। मार्गमें उनका विमान यमपुरीके पाससे गुजरा। उस समय नरकपुरीमें जितने पापी थे, राजर्षिकी देह-संसर्गी वायुके स्पर्शसे उनकी सारी पीड़ा दूर हो गयी, मरणांतक क्लेशका उपशमन हो गया। क्षण-भरके उपरांत जैसे ही महाराज जनकका विमान वहाँसे प्रस्थान करनेके लिए उद्यत हुआ, ये पाप-पीड़ित नराधम भयभीत होकर उच्चस्वरसे करुण प्रार्थना करने लगे 'पुण्यात्मन् ! आप यहाँसे न जाइये, हमारा परित्याग न कीजिये। हमें अहर्निश असहनीय नरक-यंत्रणासे अकथ क्लेश सहने पड़ रहे हैं। आपके संस्पर्श एवं पुण्य-प्रभावसे हमारी यंत्रणा थोड़ी-बहुत कम हो गयी थी। यदि आप हमें यहीं छोड़कर चले जायेंगे, तो हमारे कष्टोंकी फिर पराकाष्ठा हो जायगी। महात्मन्, हमपर कृपा कीजिए।'

उनकी यह अत्यंत दयनीय दशा देख और करुण वचन सुन राजर्षिका कोमल हृदय दया एवं सहानुभूतिसे भर आया। उन्होंने सोचा—यदि मेरे रहनेसे इन दुःखी, पाप-पीड़ित प्राणियोंका कष्ट कुछ भी अंशमें कम हो जाता है, तो मेरा यहीं रहना उचित होगा। स्वर्गसे मेरा क्या प्रयोजन ? यह यमालय ही मेरे लिए स्वर्ग-तुल्य सुखकर होगा। फिर मानवसेवा ही तो मेरा धर्म है—इहलोकमें और परलोकमें भी।

नृपश्रेष्ठ जनक दुःखार्त मनुष्योंको सुख देनेके लिए नरकमें ही रह गये। कुछ दिनों बाद यमराज पापियोंके कर्मानुसार दंड-विधानकी व्यवस्था करके यमालयका निरीक्षण करने आये। नरकके द्वारपर जब उन्होंने पुण्यात्मा जनकको देखा, तो अत्यन्त विस्मित होकर बोले—'महाराज, आपका स्वागत है। क्या आपके मनमें प्रेतलोक देखनेका कौतूहल है ? यहाँका दृश्य कोई दर्शनीय नहीं है। आप तो धर्म-शिरोमणि हैं। इस घोर नरकमें आना तथा इसका दर्शन करना आपके लिये अत्यंत कष्टकर होगा। मेरा अनुरोध है, आप लौट जायें।'

राजर्षिके मनमें कुछ कौतूहल जागा। उन्होंने प्रश्न किया—'धर्मराज, कौन-से दुष्कर्मोंसे मनुष्योंको नरकवास होता है ?' कृतान्तने उत्तर दिया—'राजन् प्राणघाती दुष्ट-पापियोंको यहां आकर भयावह नरक-कष्ट सहना पड़ता है। जो पर-द्रव्य-अपहरण करते हैं, परनिंदा-परद्रोहमें निमग्न रहते हैं, धन-लोभके कारण, जो मित्रके साथ विश्वासघात करते हैं, बिना किसी

अपराधके धर्म-परायण पतिव्रता पत्नीका परित्याग करते हैं और दंभ, द्वेष एवं मूढ़ताके कारण जो परब्रह्मका स्मरण नहीं करते, उन्हींको इस नरकमें कोटि कल्प-काल रहकर अशेष कष्ट सहने पड़ते हैं।'

धर्मराजके वचन सुनकर जनकने परम व्याकुलतासे कहा—इन मूढ़मति पापियोंके नाना दुष्कर्मोंके विषयमें जानकर मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है। धर्मराज, ये दण्डके नहीं, दयाके पात्र हैं।'

यमराजने कहा—'महाराज, ये अत्यन्त पापी हैं। आपसे क्या कहूँ—संसारमें ऐसा कोई पाप या दुष्कर्म नहीं जो इन लोगोंने न किया हो। इसलिए इन्हें अपने-अपने पापोंका फल भोगना है। आपका पुण्यसंचय तो अशेष है। अतः आप दिव्यलोकके लिए प्रस्थान कीजिए।'

धर्मराज मौन हो गये। राजर्षिने अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे कहा —'देव, क्या इन पापिष्ठोंका किसी प्रकार उद्धार नहीं हो सकता ? मैं अपने पुण्यका फल भोगनेसे पहले, इनका दुःख दूर करना चाहता हूँ। कोई उपाय हो, तो कृपया बताइए।'

महाराजके कातर स्वरसे द्रवित होकर यमराज ने कहा—'धर्म-प्रवर सचमुच, आप करुणाके सागर हैं। आपने यदि करुणावश इन पापियोंके लिए कुछ करनेका निश्चय किया है, तो अपने पुण्यका कुछ अंश इन्हें दे दीजिए और इन्हें भगवन्नाम सुनाइए।'

राजर्षि जनकने तत्क्षण इस प्रस्तावको स्वीकार कर लिया। उन्होंने अपने जन्म-जन्मार्जित पुण्य-संचयको पतित मानवताके उद्धारके लिए अर्पित कर दिया और नरकके सारे पापी महामना जनककी सेवा एवं शिक्षाके फलस्वरूप अपने दुष्कर्मोंके फलसे मुक्त होकर, दिव्यधामवासी हो गये।

●

भगवान्‌का प्रिय

जो अपनी निन्दा सुनकर दुखी नहीं होता, प्रशंसा सुनकर हर्षसे फूल नहीं उठता है, दोनों अवस्थाओंमें सम रहता है, मौन या मितभाषी होता है, जो कुछ भी प्रारब्धवश जीवन-निर्वाहके लिए प्राप्त हो जाय, उसीको सन्तोष मानकर ग्रहण करता है; जिसके मनमें स्थान-विशेषके प्रति ममता नहीं होती है, जिसकी बुद्धि सुस्थिर है और जो श्री भगवान्‌के प्रति अविचल भक्तिभाव रखता है; वह भगवान्‌को बहुत ही प्रिय होता है।

●

राम-श्याम की साम्य-शोभा

श्री रामजी शास्त्री

साहित्य-व्याकरणाचार्य

★

श्रीराम और श्रीश्याम दोनों मध्यमें अवतरित हुए हैं—मर्यादा पुरुषोत्तम दिनके मध्य तो लीला पुरुषोत्तम रात्रिके मध्य। दोनोंके आविर्भावका समय, महीना भी लगभग मध्य काल ही है। श्रीरामका मध्य दिवस, केवल मानवका ही नहीं देवोंका भी मध्य दिन था।—दक्षिणायन देवोंकी रात, उत्तरायण देवोंका दिन माना गया है। माघ माससे चैत्र मासका अन्त ही देवोंका मध्य दिन है। श्रीकृष्ण देवोंकी रातके मध्य नहीं, मानवोंकी रातके मध्य आये, क्योंकि देवोंकी आधी रातमें रात्रियाँ चांदनीसे चटकीली होती हैं, उन्हें चाहिए था अन्धकार। राम त्रेतायुगमें तब आये जब वह विदा ले रहा था और सामने आ रहा था द्वापर—

त्रेताद्वापरयोः सन्धौ रामः शस्त्रभृतां वरः

—आदिपर्व–२

दोनोंके मिलन-मध्यमें वे आये।

श्रीकृष्ण द्वापरमें तब आये जब वह विदा ले रहा था और सामनेसे आ रहा था कलियुग—दोनोंका मिलन-मध्य था।

यह मध्य क्या है? लगता है, यह एक महत्त्वपूर्ण संकेत है, प्रभुका अवतार कब होता है, इसकी कुञ्जी है। आप कह सकते हैं—बिना कुञ्जीके ही रहस्य खुल चुका है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

धर्म-ग्लानिपर अवतीर्ण होता है वह। हम कहेंगे 'नहीं-धर्म ग्लानिमें, अधर्म, अन्याय अत्याचारमें ईश्वर नहीं आता। धर्महीनता, आचारहीनता ईश्वरको कैसे बुला सकती है? रहा गीताका कथन, उतना कथन अधूरा है। पूरा होगा—**परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्,** इस कथनसे। दोका मध्य चाहिए। जहाँ सब सज्जन हैं, वहाँ धर्मग्लानि कैसी और किसे? कहाँ पीड़ाका प्रश्न? क्यों अवतीर्ण होगा प्रभु? और जहाँ सब असज्जन हैं, वहाँ अवतार विनाशका होता है, ईश्वरका नहीं, करुणामय प्रभुका नहीं। यह हुआ परिस्थितिगत, भावगत 'मध्य' का आशय, अब उसका दूसरा आशय देखें प्रभुगत।

भगवान् मध्यमें आते हैं, मध्यमें रहते हैं, इसका क्या—अभिप्राय है? मध्यका अर्थ है जो न इधर झुका है, न उधर। एक ओर है राग दूसरी ओर है द्वेष, एक ओर है बुरा, दूसरी ओर है भला, एक ओर है शत्रु दूसरी ओर है मित्र, ईश्वर दोनोंका मध्य—तटस्थ तत्त्व

है, न वह रागोन्मुख है न द्वेषोन्मुख, वह है तटस्थ। श्रीकृष्ण गीताका गान, न पाण्डवदलमें करते हैं न कौरव दलमें, गीताका मधुरघोष माधवने मध्यमें किया—

'सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत।

उस स्थितिमें स्थित होकर प्रभु जो कार्य करता है, जो वचन कहता है वह एक पक्षके लिए नहीं सर्वदलीय होते हैं, एक भूप्रदेशके नहीं सार्वभौम होते हैं। रागी विरागी सब लाभ लेते हैं उनसे।

एक सूत्र और लें। श्रीराम आये प्रकाशमें, श्याम आये अन्धकारमें। क्यों? कह सकते हैं—'प्रकाश और अन्धकार दोनों प्रभुके प्रिय हैं, सृष्टिके प्राणियोंकी दोनों सेवा करते हैं। एक कार्य-निरत करता है जीवको, दूसरा, कार्यसे थकनेपर शीतल गोदमें विश्राम देता है, भगवान् तो दोनोंको गौरव देते हैं। इस तथ्यको कुछ और गहराईसे भी ले सकते हैं। केवल अन्धकारमें रहता है दानव, केवल प्रकाशमें रहता है देव, पर मानव! वह खड़ा है प्रकाश और अन्धकारके संगमपर। यह प्रकाशका मिलन-मध्य नहीं तो और क्या है? नरावतार मध्यका अवतार है। देवलोक है ऊपर, अधोलोक हैं नीचे, मध्यम लोक है मानव लोक, वह उसी तथ्यका विवेचक है। भावकी दृष्टिसे मध्य और स्थानकी दृष्टिसे मध्यमें रहनेवाले लोगोंके लिए मध्यमें आना समुचित ही है।

इस तथ्यका दूसरा पहलू भी है। श्रीराम प्रकाशमें आये—आशय हैं उस कालकी उज्ज्वल स्थिति। अवतारकालिक प्रकाश उसपर प्रकाश डालता है। हम देखते हैं, उस कालमें अयोध्या अलग है, लंका अलग; स्थानकी ही दृष्टिसे नहीं भावकी दृष्टिसे भी। सज्जन और असज्जनकी स्पष्ट सीमारेखा थी। एक ओर हैं सब असज्जन और दूसरी ओर सब सज्जन। मिथिला, अयोध्या सज्जनोंका वासस्थान, लंका असज्जनोंका। मध्यमें है किष्किन्धा। वहाँ है सज्जनों और असज्जनोंका संगम। ऐसा संगम न अवधमें है न लंकामें, दो भावोंकी स्थिति नरोंमें नहीं वानरोंमें थो। नर और नरेतरका संगम ही तो वानर है। वहाँ है संशय—सत्-असत्का भाव। मानवों और दानवोंमें अलगाव स्पष्ट था, ऐसा अलगाव किसी भी समाजके लिए यथावत् नहीं है, यह बात भी उज्ज्वल है, प्रकाश-युगका चिह्न है।

पर उस समय राक्षस-पक्ष कैसा है, यह देखना भी प्रसंगानुकूल होगा। लंकामें निशिचर रहते हैं। स्पष्ट है, निशिचर निशाका अन्धकारका प्राणी है। पवनकुमारने वहाँ रात्रिमें ही प्रवेश किया था सबको सोते हुए पाया। बिभीषणका जागरण देखा जाता है तब जब रामभक्त हनुमान्का चरण पड़ता है लंका भूमिपर। वहाँ जागरूक तो केवल वैदेही है। इस अन्धकार भूमिमें भी आलोक है। आश्चर्यचकित थे मारुतनन्दन! वहाँ ब्रह्मवेलामें वेदोंकी पावनध्वनि गूँज रही थी।

शुश्राव ब्रह्मनिर्घोषं विरात्रे ब्रह्मरक्षसाम्।

लंकामें अग्निहोत्र होता है, सन्ध्यावन्दन होता है, वहां नास्तिक कोई नहीं। आस्थावान् हैं तपोबलके प्रति, अगाध श्रद्धा रखते हैं—आराधनामें। संकटके क्षणोंमें यज्ञ और आरा-

धनाका आश्रय लेते हैं वहाँके लोग। केवल दूसरोंको यज्ञादि कार्यसे विरत—रखना चाहते हैं, क्योंकि भय है उन्हें, उनका कोई प्रतिद्वन्द्वी न होने पाये। शाप-वरदानकी मान्यता है।

वानरोंकी ओर देखिए, किष्किन्धामें उनके विशाल भवन हैं। आदि कविने क्रमेण ऐसा वर्णन किया है जिससे प्रतीत होता है भवनोंपर उनके परिचय-पद है। वाली सन्ध्या-वन्दन करने सागरोंपर जाता है, उसके निधनपर शास्त्र विधिसे प्रेत-कार्य किया जाता है। आजकलके कुछ पण्डितम्मन्य लोग रावण और बानरोंको वैदिकेतर अनार्य कहते हैं, वे गतानुगतिक हैं, भेड़िया-धसानमें हैं, वस्तुतः आर्य-अनार्य नामकी कोई जाति नहीं।

यही है उस कालका प्रकाश-पक्ष। उस समयका भयानकसे भयानक वनप्रान्त भी साधनापूत है। अतः श्रीरामका प्रादुर्भाव प्रकाशमें हुआ, अर्थात् राम जिस कालमें प्रकट होते हैं उस समय प्रकाश था—प्रकाशके लोग थे। साधनाका जैसा-तैसा रूप राक्षसोंतकमें विद्यमान था, अन्यलोगोंकी तो बात ही क्या।

किन्तु श्रीकृष्ण रात्रिमें—अन्धकारमें आये, स्पष्ट है कि श्रीकृष्णके कालमें त्रेतावाली सीमारेखा मिट चुकी थी। उस समय दानवों-राक्षसोंका कोई अलग नगर नहीं बसा है। वे तो सर्वत्र घुल-मिलकर रहते हैं। वे सर्वत्र है स्त्रीरूपमें, सखाके रूपमें, पवित्र गाय बैल जैसे रूपोंमें। कंस कौन है? मामा परिवारका व्यक्ति है! जितने धर्म-विरोधी हैं सबके सब नाते-रिश्तेके लोग हैं। कंसको देखिए, न उसमें तपके प्रति आस्था है न यज्ञादिकमें श्रद्धा। यही है अन्धकार-पक्ष। उसमें श्रीकृष्णका अवतार हो, वह रात्रिमें हो, यह उचित ही है। अन्धकारके प्राणियोंके प्रति प्रभुका प्रादुर्भाव प्रशंसनीय है। चन्द्रवंशमें प्रकट होनेवाला—रात्रिका आदर करता है, यह औचित्य भी है।

दोनोंमें समन्वय

समासमें उभयवंशावतंसोंका सुमधुर सामञ्जस्य भी दर्शनीय है, श्रीराम दिनमें प्रकट हुए, पर बहार रातकी थी। श्रीकृष्ण रात्रिमें आविर्भूत हुए, पर कार्य दिनका देखा गया।

व्रजबलभके प्राकट्य-क्षणोंमें निसीथ काल-आधीरात।
कृष्णपक्ष और गगनके आँगनमें छाये थे श्याम घन॥

पर आश्चर्यपूर्ण घटना यह घटी कि उस अँधेरेमें सूरजका जादू चल गया। अवधूत शिखामणि श्रीशुकाचार्य कहते हैं: **हृष्यज्जलरुहश्रियः** सरोवरोमें सरोज मुसकुराने लगे और उनपर मँडराने लगे—मधुकर। बताइये, आधीरातमें कमल कैसे खिलने लगे? कमल तो दिनमें खिलते हैं। सूर्यकी सुनहली किरणोंमें पखुड़ियाँ—आंखें पसार कर नर्तन करती हैं पद्म की। वस्तुतः यह था रातमें नजरोंके सामने दिनका नजारा।

इधर देखिये रघुकुल भूषण रामभद्रको। वे प्रकट हुए दिनमें, पर उनसे मिलने आ गयी रजनी रानी। कविकुल तिलक तुलसी कहते हैं—

अवधपुरी सोहै यहि भाँती प्रभुहि मिलन आई जनु राती॥

इस उत्प्रेक्षणके परिवेषमें पूरा रूप प्रस्तुत कर दिया।

देखि भानु जनु मन सकुचानी
तदपि बनी सन्ध्या अनुमानी।
अगरधूप जनु बहु अधियारी
उड़इ अबीरमनहुँ अरुनारी।
मन्दिर मनि समूह जनु तारा
नृपगृह कलस सो इन्दु उदारा ॥ इत्यादि।

एक अन्य चमत्कार देखिये। श्रीकृष्ण आये वर्षाऋतुमें, किन्तु वसन्त ऋतु चुपचाप आ गयी। रिम-झिम बरसती बूँदोंमें रस बरसानेवाला रसिया भींगता हुआ निकला मथुरासे, मगर बागोंमें बसन्तकी बहार बगर गयी। शुकमुनि कहते हैं :—

'द्विजालिकुलसन्नादस्तबका वनराजयः।'

बन कुसुमोंसे महक उठे, भ्रमर वृन्दोंका गुंजन छा गया, पंछी चहक उठे :

ववौ वायुः सुखस्पर्शः पुण्यगन्धवहः शुचिः।

शीतल, मन्द, सुगन्ध हवा झूमती गयी ! बताइये वसन्तमें और क्या होता है ?

इधर देखिये रघुकुलालंकार चूडामणि रामचन्द्रको। वे वसन्तमें महकते फूलोंमें पराग-की तरह उतरे—

वन कुसमित गिरिगन मनियारा।
स्रवहि सफल सरितामृत धारा ॥
गगन विमल···
'नौमी तिथि मधुमास पुनीता' तो था ही।

पर इस वसन्तमें बरसातसे नहीं रहा गया। पर वेचारी बरसात देवराजके मेघोंको कहाँसे लाये, हाँ देवोंने कुछ सहायता कर दी—

बरसति सुमन सुअञ्जलिसाजी

मकरन्दपूरित पुष्प बरसाने लगे तो रस बरसने लगा, पर थोड़ी-थोड़ी मन्द-मन्द गर्जना भी होनी चाहिए—

गह-गह गगन दुंदुभी बाजी

बरसामें कीचड़ होती है, अयोध्याके गलियोंके बीच-बीचमें कीच होगी—

मृग मद चन्दन कुमकुम कीचा।
मची सकल बीथिन बिच बीचा ॥

इस प्रकार दोनों अवतारोंमें रहस्यात्मक साम्य है। लेखका कलेवर लघु रहे। इस दृष्टिसे संक्षेपमें दोनोंकी चर्चा की गयी। नारायण स्वामीजी एक बात अवश्य कह गये हैं—

नारायन दोउ एक हैं रूप रंग तिल रेख।
उनके नयन गँभीर हैं इनके चपल विशेख ॥

●

श्री प्रताप-जयन्ती

सिसौदिया कुल (एवं सूर्यवंश) के रत्न वीरवर महाराणा प्रताप हिन्दू जातिके हृदय-सिंहासनपर चिर कालसे प्रतिष्ठित हैं। मुसलिम शासन-कालमें भारतीय शौर्यको उद्दीपित करनेवाले दो ही महापुरुष अग्रगण्य हुए हैं—वीरवर महाराणा प्रताप और शूर-शिरोमणि शिवाजी। एक अकबरके समयमें हुए थे और दूसरे औरंगजेबके शासनकालमें। इन दोनों महापुरुषोंने हिन्दू-धर्मकी डूबती हुई नौकाको कुशल कर्णधार बनकर बचा लिया। ये दोनों ही भगवान् श्रीकृष्णकी गीताके इन वाक्योंसे प्रभावित थे—**'स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।' 'धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत् क्षत्रियस्य न विद्यते।' यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम्। सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम्॥' 'अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि। ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि।'** इत्यादि।

भगवान् श्रीकृष्णसे यह अद्भुत प्रेरणा ले इन दोनों शूर वीरोंने हिन्दू-समाजको भारी संकटसे बचा लिया और ये अपनी ऐसी छाप छोड़ गये कि भारतीय जनता सतत इनके चरणोंमें श्रद्धाके सुमन बिखेरती रहेगी। हम १४ जूनको होनेवाली प्रताप-जयन्तीके इस शुभ अवसरपर राणाप्रतापके आदर्शोंका स्मरण करें और जीवनमें सदा इनसे स्वधर्ममें दृढ रहनेके लिए अदम्य उत्साह एवं साहसकी प्रेरणा लेते रहें।

पुण्य-स्मरण और श्रद्धाञ्जलि

श्रीकृष्ण-सन्देशके संस्थापक तथा श्रीकृष्ण-जन्म-स्थानके समुद्धारक ब्रह्मलीन श्रीयुगल किशोर बिरलाकी पुण्य वार्षिक तिथिके अवसरपर श्रीकृष्ण-सन्देश-परिवार उनके पावन आदर्शोंका स्मरण करता हुआ उनके प्रति सादर श्रद्धाज्जलि अर्पित करता है। वे धन-कुवेरके कुलमें उत्पन्न होकर भी धनविषयक आसक्तिसे कोसों दूर रहे, युवावस्थामें ही विधुर हो जानेपर भी उन्होंने पुनर्विवाह नहीं किया और अखण्ड ब्रह्मचर्यके पालनपूर्वक देश, लोक तथा समाजकी निःस्वार्थ सेवामें संलग्न रहकर जीवन सार्थक किया। वे जलसे निर्लिप्त कमलकी भाँति भोगोंसे असंसक्त रहे। उनके जीवनमें गीताके ज्ञान, भक्ति और कर्म—तीनों योगोंका अद्भुत समन्वय था। हिन्दू-धर्ममें सुदृढ़ आस्था रखनेवाले आस्तिक-शिरोमणि बिरलाजी भारतीय संस्कृतिके प्रचार, प्रसार और संरक्षणमें ही सबका हित मानते थे। उनके उन्मुक्त दानकी वारि-धारासे अभिषिक्त हो सहस्रों धर्म-संस्थानरूपी उद्यान लहलहाते रहे हैं। उन्होंने देशमें बहुसंख्यक विद्यालय, चिकित्सालय, तथा धर्मशालाएँ स्थापित कीं और उन सबको शानसे चलाया। देश-विदेशके प्रमुख नगरों तथा विभिन्न तीर्थोंमें उनके परिवार द्वारा बनवाये गयेश त-शत मन्दिर आज भी घंटे-घड़ियालोंकी गम्भीर ध्वनिसे गगनस्थलको गुंजाते रहते हैं। उनके जैसा दयालु, लोकोपकारी, जनसेवक तथा धर्मात्मा महापुरुष किसी भी देशको बड़े भाग्यसे उपलब्ध होता है।

●

श्रीकृष्ण-सन्देशके अष्टम वर्षका विशेषांक

१ अगस्तको प्रकाशित होगा

माननीय लेखक महानुभाव इसके लिए निम्नांकित विषयों पर विचारपूर्ण, प्रेरणाप्रद, उत्तमोत्तम लेख भेजनेकी कृपा करें। इनके अतिरिक्त अन्य शीर्षकसे भी श्रीकृष्ण-सम्बन्धी लेख भेजे जा सकते हैं।

१ श्रीकृष्णका परमात्मस्वरूप।
२ श्रीकृष्णकी शिव, ब्रह्मा आदिसे एकता।
३ श्रीकृष्ण, महाविष्णु और विष्णु।
४ श्रीकृष्णका परम धाम।
५ श्रीकृष्णावतार लोकके लिए महान् मङ्गलकारी।
६ श्रीकृष्णके लोकहितकारी कार्य।
७ श्रीकृष्णद्वारा देश, राष्ट्र तथा समाजके उत्थान-सम्बन्धी कार्य।
८ श्रीकृष्ण और समाज-सुधार।
९ श्रीकृष्णका अप्रतिम शौर्य।
१० श्रीकृष्णकी अनुपम रणनीति।
११ श्रीकृष्णकी सारथ्य-कला।
१२ श्रीकृष्ण द्वारा धर्मराज्यकी स्थापना।
१३ श्रीकृष्ण और उनका यादव-गणतन्त्र राज्य।
१४ श्रीकृष्ण विश्वके आध्यात्मिक गुरु।
१५ श्रीकृष्ण हमारे जीवनके पथदर्शक।
१६ श्रीकृष्ण और साम्यवाद।
१७ श्रीकृष्ण और कौटिल्यकी राजनीति।
१८ श्रीकृष्ण और गोपालन।
१९ श्रीकृष्णकी मल्लयुद्ध-कला।
२० श्रीकृष्णकी मुरली।
२१ श्रीकृष्णके आयुध।
२२ श्रीकृष्णके कल्याणकारी सन्देश।
२३ श्रीकृष्ण सदा हमारे साथ हैं।
२४ श्रीकृष्णसे हमारी सब समस्याएँ सुलझ सकती हैं।
२५ श्रीकृष्णका विश्व-प्रेम।

विनीत
सम्पादक—श्रीकृष्ण-सन्देश
रू० नं० ६ कैलगढ़ कालोनी; जगतगंज
वाराणसी

हास्यका साम्य और वैषम्य

मूर्ख विदूषक और वयस्य विदूषक

स्व० श्री व्रजनाथ झा

शेक्सपीयरके आठों सुखान्तनाटकों 'कामेडीस्' की चार श्रेणियाँ है। प्रथम श्रेणीके सुखान्त[1] नाटक विशुद्ध रतिरञ्जनात्मक (Romantic) है जिनमें कल्पना और सत्यता दोनों ही देखी जाती हैं। दूसरी श्रेणीके सुखान्तोंमें सुख-दुःखका संमिश्रण है तथा तीसरी श्रेणीके नाटक विशुद्ध हास्यात्मक हैं जिनमें सत्यतामें हास्य दीखते हैं। चतुर्थ श्रेणीके नाटक अत्यन्त सीरियस (गम्भीर) हैं। किन्तु हास्य, गम्भीरताका साथी बन कर वहाँ भी रहता ही है।

इनमें हास्य सभी रूपकोंमें देखे जाते हैं, जहाँ विशेषता इस बातकी होती है कि विदूषक (Fool) के अतिरिक्त प्रायः बुद्धिमान नायक या वुद्धिमती नायिका सभी अपनी-अपनी बौद्धिक प्रखरतामें कभी-कभी हास्य उत्पन्न करते रहते हैं। किन्तु नायिकाओंका मूल्य हर दृष्टिसे शेक्सपीयरके नाटकोंमें अधिक है। इनमें[2] अधिक कौशल, चतुरता, वाक्पटुता, गाम्भीर्य एवं हास्य देखे गये हैं।

---

१. (क)–विशुद्ध (romantic) कल्पना और रतिरञ्जना वाले सुखान्त जैसे—"Twelvth Night" और "As you like it."

(ख)–सुख और दुःखके संमिश्रणवाले सुखान्त जैसे—"A mid Sammer Nights Dream," much A do About Nothing".

(ग)–सत्यमें हास्यवाले सुखान्त (हास्य-प्रधान) जैसे—"Taming of the strew", "The merry wives of windsor."

(घ)–गम्भीर घटनावाले सुखान्त जैसे—"The merchant of venice".

२. देखिये Beatrice, viola, Rosalind और Portia निश्चय ही Benedick Duke or sino, or lando तथा Bassanio से अधिक कुशल और वाक्पटु हैं। संस्कृतके नाटकोंमें बौद्धिक प्रखरता और कुशलता नायकोंमें अधिक है, पर नायक हास्य उत्पन्न करते नहीं दीखते। नायिकाकी सखियाँ नायिकासे हास्य अवश्य करती दिखलायी देती हैं। इसका कारण है, नायकोंकी काम-विह्वलता और आतुरता है। अंग्रेजीमें नायिकाएँ हास्य करती हैं। इसी हेतु पाश्चात्य साहित्यमें हास्य विदूषकको fool या clawn कहा गया है।

लेकिन नायक-नायिका या अन्य पात्रोंके अतिरिक्त हास्य उत्पन्न करनेवाला विदूषक ही है, उसे clawn या Fool कहते हैं। ये नाना रूपोंसे हास्य उत्पन्न करते हैं। इनमें Pun से Fun है तथा Wit भी।[1] इनके अलावे ये Farce भी करते हैं अर्थात् किसी घटनाका निर्माण कर हँसी फैलाते हैं। जैसे वोटमके सिरको गदहामें बदल देना' आदि। आजकल सरकसमें जोकर जिस तरहका काम करता है, वह Farce भी है, किन्तु Witty भी। विदूषकको Courf fool, Jester या Joker या Clawn कहा गया है। ये शब्दोंके इधर-उधर बदलनेसे नानाविध गीत गाकर घटनामें योगदान करते रहते हैं। विशुद्ध हास्यात्मक कॉमेडीमें हम सत्य, हास्य ओर व्यंग्य पाते हैं।[2] इनमें रतिभाव और कल्पना गौण है। किन्तु इनमें छोटे दर्जेका हास्य है जैसे घोड़ाका खेल या जोरसे हँसना आदि। परन्तु रतिभावोत्पादक तथा कल्पनाप्रधान कॉमेडी (रोमान्स) में सुन्दर हास्य, बौद्धिक प्रखरतामें हास्य तथा अन्य उच्च कोटिके हास्य दीखते हैं। इस प्रकारके Romantic comedy में प्रेम और गीत[3] साथ साथ चलते हैं।

रतिभावोत्पादक, कल्पना तथा हास्यप्रधान सुखान्तोंमें 'as you like it' का प्रधान स्थान है। इसका विदूषक है Touchstone. यहाँ इन्हींके बारेमें थोड़ी चर्चित शास्त्रीय चर्चा प्रस्तुत की जा रही है।

टचस्टोन केवल विदूषक ही नहीं है। Preistly के अनुसार इसके तीन कार्य हैं :

१. शब्द भ्रंशक होते हुए भी शब्दोंका खेल खेलता है (quibbles and verbal tricks) :

२. ग्रीक कोरसकी तरह किसी भी घटनाको हास्यके पुटसे ही सामने लाता है। इसी प्रकार किसी विशेष घटनाको हास्यसे ही खोलता है। Parory (moek

---

१. (i) Pun The Various meaning of words in a play if it is seldom used except for jest. Nesfeild.

(ii) Ykony or sancasm : It is to make damaging remarks about some persons or things.—Nesfeild.

(iii) Wit, It is to apply intelligence in discource.

(iv) Farce अपनी विकृत आकृति और आचरणसे।

(v) Satire-censurs or faults of individual or communities.

२. Ben Jonson की camedly की तरह शेक्सपीयरके 'The Taming of the strew, and the merry wives of windsor'.

३. निर्वासित ड्यूक बनमें (Forest of Aden में) गीत गाते हैं। इसी तरह taban बजाता है Fool। Sir Tobby जो शराबी है तथा Falstaff गीत (Hum Tavern tunes) गाते देखे गये हैं।

(शेष अगले अंकमें)

काशीकी एक महनीय विभूति उठ गयी

अत्यन्त खेदका विषय है कि गत दिनाङ्क २९।५।७२ को प्रातःकाल काशीके प्रकाण्ड पण्डित, दर्शनीय दार्शनिक एवं महनीय महाकवि श्री उमापति द्विवेदी 'कविपति' संस्कृत-जगत्को विषादमग्न करके ७४ वर्षकी अवस्थामें दिवंगत हो गये। इधर दस-बारह वर्षसे आप निजी भवन कविपति कुटीरम् (मदैनी, वाराणसी) में निवास करते थे और कई महीनोंसे बीमार चल रहे थे। काशी केदारखण्डमें इस नश्वर शरीरको छोड़कर आपने सच्चिदानन्दमय शिवका सायुज्य प्राप्त कर लिया। आप शिव-शक्तिके उपासक होनेके साथ ही भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दोंके परम अनुरागी थे। आपके द्वारा रचित अभिनव महाकाव्य पारिजातहरणमें, जिसपर उत्तरप्रदेशीय सरकारसे पुरस्कार भी प्राप्त हो चुका है, श्री कृष्णके महामहिम परमेश्वरीय स्वरूपपर महान् प्रकाश डाला गया है। आपके द्वारा लिखित एवं प्रकाशित शिवास्तुतिका भी उच्चकोटिके विद्वानोंमें बड़ा समादर हुआ है। आपकी अन्तिम कृति 'चैतन्यचिन्तनम्'का मुद्रण हो रहा है, जो आपके गम्भीर दार्शनिक अनुचिन्तनकी गरिमाका द्योतक है। हम आपके शिव-चरणोंमें सादर प्रणिपात अर्पित करते हैं। आपके न रहनेसे संस्कृत साहित्यकी अपूरणीय क्षति हुई है।

रा. ना. द. शास्त्री

निगमामृत

(पुरुष-सूक्त)

३.

एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥

विगत, अनागत, अद्य जगत् जो इतना उसका विभव बड़ा,
वास्तवमें पर परम पुरुष वह उससे भी है बहुत बड़ा ।
एक अंशमें विलसित इसके सकल भूत हैं पादविभूति,
शेष अंश हैं दिव्य धाममें अमृत अनन्त त्रिपाद विभूति ॥

४.

त्रिपादूर्ध्वं उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः ।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत् साशनानशने अभि ॥

ऊपर उठा त्रिपाद पुरुष हरि गुण-दोषोंसे संसृतिसे,
पाद अंश आता-जाता है पुनराबद्ध जन्म-मृतिसे ।
वही फैल सब ओर रहा है बनकर विविध जीव-समवाय,
वही सभोजन प्राणिजगत है, वही अभोजन जड-समुदाय ॥

सूक्ति-सुधा

(भीष्म द्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति)

१.

इति मतिरुपकल्पिता वितृष्णा
भगवति सात्वतपुङ्गवे विभूम्नि ।
स्वसुखमुपगते क्वचिद् विहर्तुं
प्रकृतिमुपेयुषि यद् भवप्रवाहः ॥

जो हैं भगवान् सर्वव्यापक महान् विभु,
जो कि यदुकुलके तिलक कहलाते हैं,
अपने स्वरूपभूत सुखमें मगन जो हैं,
लीला-हेतु प्रकृति कदापि अपनाते हैं ।
सन्तत प्रवहमान सृष्टि के प्रवाह के जो—
अद्वितीय उद्गम या उत्स कहे जाते हैं,
हम वसुदेव-देवकीके उन्हीं नन्दनमें—
कामनारहित मति अपनी लगाते हैं ।।

२.

त्रिभुवनकमनं तमालवर्णं
रविकरगौरवराम्बरं दधाने ।
वपुरलककुलावृताननाब्जं
विजयसखे रतिरस्तु मेऽनवद्या ॥

त्रिभुवन-कमनीय कान्तिका विलास जहाँ,
सुतरु तमाल-तुल्य नीलिमा घनेरी हो,
रवि-किरणावलीके सदृश सुगौर - पीत—
वसन विलोक जिसे चञ्चला भी चेरी हो ।
काली घुँघराली अलकावलीसे आवृत-सी—
जिसके अमन्द मुख-चन्द की उजेरी हो,
ऐसे मनमोहन अनूप रूपधारी उन—
विजय-सखामें अनवद्य रति मेरी हो ।।

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ मथुराके लिए देवधरशर्मा द्वारा आनन्दकानन प्रेस, ढुण्ढिराज, वाराणसी—१ में मुद्रित एवं प्रकाशित